अंगद का पाँव



श्रीलाल शुक्ल

ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला—हिन्दी ग्रन्थाङ्क—९७

अंगदका पाँव

श्रीलाल शुक्ल

भारतीय ज्ञानपीठ • काशी

ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला
सम्पादक और नियामक
श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन

प्रथम संस्करण
१९६५
मूल्य ढाई रुपये

प्रकाशक
मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

मुद्रक
बाबूलाल जैन फागुल्ल
सन्मति मुद्रणालय, वाराणसी

पूज्यवर पितृतुल्य

पं० चन्द्रमौलि सुकुलको समर्पित

विषय-क्रम

अंगदका पाँव

•

साहित्य

•

संस्कृत पाठशालामें प्रसाद

पण्डितपुरकी संस्कृत-पाठशालाका प्रसंग है। पण्डित प्रेमनाथ शास्त्री भाषा और संस्कृतके विद्वान् हैं। वे दकियानूस नहीं हैं। इसलिए भारवि और माघके साथ ही साथ कभी-कभी प्रसाद और निरालाका भी नाम ले लेते हैं। उन्हें सब छायावादी कवियोंके नाम याद हैं। वे यह भी जानते हैं कि महादेवीजी संस्कृतकी एम० ए० हैं, निरालाने बचपनमें श्लोक लिखे थे और प्रसादने संस्कृतका अध्ययन घरपर किया था। पन्तके बारेमें उनकी राय अच्छी नहीं है। क्योंकि पन्तने प्रभातका प्रयोग स्त्रीलिंगमें किया है और दृग सुमन फाड़में सगासका विग्रह पैदा कर दिया है।

प्रभात बेला है। छायाएँ लम्बी होकर फैली हैं। अतः वातावरण छायावादी है। संस्कृत पाठशालाका चबूतरा टूटकर धरतीके ऊपर चिन्ता-भार-सा टिका है। उस पर पड़ा हुआ छप्पर देखकर लगता है कि यहाँ प्रलयकी लहरें आ चुकी हैं और उसपर पालना बनकर निकल चुकी हैं। उस छप्परमें बर्रके छत्ते शीतल ज्वाला-सी जला रहे हैं। यत्र-तत्र फैली मक्खियोंका समुदाय हृदयमें बसी हुई सुधियोंकी बस्ती-सा जान पड़ता है। पाठशालाके सामने जामुनका पेड़ टपक रहा है जिससे कण-कणमें स्पन्दन है। वहीं घने प्रेम तरु तले एक सरोवर है जहाँ 'ले चल मुझे भुलावा देकर' वाला हाल-चाल दिखाई देता है। जामुन टपकते हैं, विद्यार्थी खाकर गला खराब करते हैं और वायु मर्मर-स्वरमें तरु-पल्लवों

द्वारा कहती है, 'अब भी चेत ले तू नीच' मेढक बोलते हैं, 'करु० का० ब०' 'करु० का० ब०,' जैसे इशारा कर रहे हों, 'करुणा कादम्बिनी बरसे !'

इसलिए इसमें आश्चर्य ही क्या कि पण्डित प्रेमनाथ शास्त्री बालकोंको प्रसादका काव्य पढ़ाने लगें ! प्रसंग "गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे" ने खोला। वे बोलेः—

"अहा ! धन्य हैं भारत-भूमि-भागके रहनेवाले ! देवता तक यह गीत गाते हैं···" शास्त्रीजीका शीश छायावादी काव्यके अर्थ-सा जटिल है। मस्तकपर रक्त चन्दनकी बिन्दी ही बिन्दी दिखायी देती है, मानो कविके मनमें किसी अपरिचित प्रीतिमयी नायिकाकी स्मृति हो। छायावादी शब्दावली-सी कोमल और मधुर मुख-मुद्रा है। हृत्तन्त्री जैसा टूटा हुआ चश्मेका फ्रेम है। उसे स्नेहकी डोरके समान धागेसे जोड़कर कान तक पहुँचाया गया है। वाणीमें ऐसी विवशता है मानो बिदाईमें वेदना मिली है। वे अब कह रहे हैंः—

"बालको, यहीं प्रसादजीने भारत-वंदनामें जो गीत लिखा है उसे भी सुन-समझ लो।

कवि कहता हैः—

अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच 'सुनसान' क्षितिज को
मिलता एक सहारा।

(पण्डितजीने 'अनजान' का पाठान्तर 'सुनसान' बनाकर कहा:)

"इसका गौण अर्थ यह है कि हमारा देश लाल-लाल है। यहाँ पहुँचकर सुनसान क्षितिजको एक सहारा मिल जाता है।

अब इसका विशेष अर्थ देखो।

अरुणका अर्थ है लाल। कवि-समयके अनुसार जैसे मलिनता आकाश और पापका लक्षण है, धवलता यश, हास और कीर्तिका, वैसे ही लाल रंग क्रोध और अनुरागका लक्षण है।

"मालिन्यं व्योम्नि पापे यशसि धवलता वर्णयते हासकीर्त्योः रक्तं च क्रोधरागौ···।" इससे यह सिद्ध हुआ कि अपने देशमें क्रोध और रागकी प्रधानता है। अर्थात्, क्रमशः रौद्र और शृंगार रसका यहाँ प्राचुर्य्य है। अब 'मधु' का अर्थ लो। मधु माने मीठा। मधुका अर्थ मदिरा भी होता है। साथ ही उपनिषद् वाक्य है 'चरन् वै मधु विन्दति।' यहाँ मधुका अर्थ अमृतत्व है। यदि मधुका अर्थ मधुर लें तो प्रमाणित होगा कि अपने देशमें मिष्टान्नका आधिक्य है। मिष्टान्नका आधिक्य होनेका ही परिणाम यह हुआ कि इस देशमें ब्राह्मण-संस्कृति बहुत कालतक उन्नत स्थितिमें रही। अथवा, मधु माने शहद; सो शहद सात्त्विक वृत्तिका द्योतक है, अर्थात् यह देश सात्त्विक गुण प्रधान है। मदिराका अर्थ लिया जाय तो मदिरा यक्षोंका पेय है। कालिदासने 'यस्यां यक्षाः सितमणिमयान्येत्य हर्म्यस्थलानि' वाले प्रकरणमें कहा है कि यक्ष मधु सेवन करते हैं। अमरकोषमें कहा है :—

विद्याधराप्सरो यक्षः···

भूतोऽमी देवयोनयः।

अतः मधुलाभार्थ इस देशमें यक्षादि देवयोनियाँ आकर बसीं।

मधुमय बताकर कवि यह कहना चाहता है कि यह देश देव-योनियोंका प्रिय है। पुनः देखो, मधु अर्थात् अमृतत्व। कहा जा सकता है कि अपने देशमें अमृतत्व भरा है। अर्थात्, यहाँ मनुष्य अमर है। या यों कहिए कि यहाँ अमर अर्थात् देवगण मनुष्य होकर आते हैं। 'अमरा निर्जरा देवाः' इत्यमरः—इसे 'गायन्ति देवाः' के 'भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्' से सिद्ध किया जाय तो संगति बैठेगी। कुल मिलाकर अर्थ यह हुआ कि इस देशमें सात्त्विक पुरुष रहते हैं, यक्ष रहते हैं तथा देवता वास करते हैं। कुछ विद्वानोंका अर्थके विषयमें यह मत है कि अरुण अर्थात् सूर्य मधुभरा अर्थात् अमृतत्वपूर्ण है और वही हमारा देश है, ऐसा इस गीतका अर्थ है। इससे यही प्रमाणित होता है कि इस देशमें सभी सूर्यवंशी हैं और चन्द्रवंशी किसी दूसरे देशसे आये थे। सुकवि प्रसादजी इतिहासके प्रकाण्ड पण्डित थे। इस पंक्तिमें उन्होंने भारतीयोंके सूर्यवंशी होनेका सिद्धान्त प्रतिपादित किया है।

"अब दूसरी पंक्तिकी व्याख्या करते हैं:—

'जहाँ पहुँच सुनसान क्षितिजमें मिलता एक सहारा।'

क्षितिजमें ही छायावाद है। क्षितिजका प्रथम अर्थ तो यह है कि जो क्षिति अर्थात् पृथ्वीसे उत्पन्न हुआ हो। पृथ्वीसे उत्पन्न हुआ है खनिज तत्त्व, लोहा, कोयला, मिट्टीका तेल। यह पदार्थ अन्य देशोंमें सुनसान पड़े रहते हैं किन्तु भारत देशमें आकर इन्हें सहारा मिलता है। अतः जिस प्रकार कविने प्रथम पंक्तिमें इस देशका इतिहास वर्णित किया है वैसे ही इस दूसरी पंक्तिमें भूगोलका वृत्तान्त सुनाया है। साथ ही, क्षितिज अर्थात् पृथ्वी और

आकाशके मिलनेका जहाँ भ्रम हो वह रोदसी-वृत्त। तुम जब ध्यानसे देखोगे तो जानोगे कि सुनसान क्षितिजको इसी देशमें सहारा मिला है क्योंकि जिधर देखो उधर क्षितिज ही क्षितिज है। यह हमारे देशकी एक भारी भौगोलिक विशेषता है। ऐसी विशेषता इतर देशोंमें नहीं है।

अब आगेके चरणमें अद्‌भुत रसका वर्णन है:—

सरस तामरस गर्भ-विभा पर
नाच रही तरु-शिखा मनोहर
छिटका जीवन हरियाली पर
मंगल कुंकुम तारा।

बालको! इस चरणका अवलोकन करो जिसका अर्थ साधना उतना ही कठिन है जितना 'माघ' के एकाक्षरी श्लोकोंका। कहते हैं कि सरस अर्थात् रसपूर्ण तामरस अर्थात् कमलके गर्भकी जो विभा है उसपर मन हरनेवाली तरुशिखा अब नाच रही है। हरियालीपर जीवन अर्थात् जल फैला है और उसमें कुंकुमवर्ण मंगलतारा शोभायमान है।

इन पंक्तियोंका अर्थ समझनेके हेतु भाषाका साहित्य समझना चाहिए। ये पंक्तियाँ छायावादकी हैं। वाद अर्थात् सिद्धान्त। अर्थात् इन पंक्तियोंके अन्तर्गत प्रतिकृतिका सिद्धान्त निहित है। पहले हरिऔधजी ने 'प्रियप्रवास' में लिखा था:—

तरु-शिखा पर थी अब राजती
कमलिनी-कुल-वल्लभ की प्रभा।

अब छायाका सिद्धान्त लगाकर प्रसादजीने इस भावको उलट दिया है। अतः पहले यदि कमलिनी-कुलके वल्लभकी प्रभा तरु-

शिखापर विराजती थी तो छाया-रूपमें कमल-कुलकी प्रभा अब तरुशिखापर विराजती है और छायाका प्रयोग होनेके कारण तथा जलमयी हरियालीके सम्पर्कसे वह नाचती-सी दीख पड़ती है। और उसकी रक्ताभा मंगल-तारा-सी जान पड़ती है। इन पंक्तियोंमें पुरातन साहित्यको उलटकर जलमें छायावत् करके दिखाया गया है। साथ ही साथ अद्भुत-रसका भी समावेश किया गया है। आगे कहते हैं :—

लघु सुरधनुसे पंख पसारे
शीतल मलय समीर सहारे
उड़ते खग जिस ओर क्षितिजको
समझ नीड़ निज प्यारा।

अपने देशकी वन्दनाका मुख्य भाग इन्हीं पंक्तियोंमें है। कवि कहता है कि इस देशमें ऐसे भी पक्षी हैं, जो कि उड़ते हैं। जब वे उड़ते हैं तो उनके पंख इन्द्र-धनुष-सा बनाते हुए फैलते हैं। इस देशके पक्षी पंखोंसे नहीं उड़ते। पंख तो केवल पसारते भर हैं। उड़ते वे मलय-समीरके सहारे हैं। अब यह शंका उठती है कि जब मलय समीर नहीं होता तब वे किसके सहारे उड़ते हैं? इसका समाधान प्रथम तो यही है कि जो मलय-समीर न होने पर भी उड़ते हैं वे इस देशके पक्षी न होंगे। अथवा द्वितीय समाधान यह है कि मलय-समीर न होनेपर जब वे उड़ते हैं तब वे पंख केवल पसारते नहीं उनका सहारा भी लेते हैं। प्रसादजी को पक्षियोंका और विशेष कर इसी देशके पक्षियोंका विशद ज्ञान था। अतः तुम देखो कि वे कहते हैं कि इस देशके पक्षी क्षितिजको ही अपना नीड़ अर्थात् घोंसला समझकर उड़ते हैं।

इस प्रसंगमें मृग-तृष्णाकी छाया आ गई है। जैसे पृथ्वीपर हिरन मरुभूमिमें बालूको देख उसे सरिताका जल मान उसी दिशामें धावता है वैसे ही आकाशमें पक्षी क्षितिजको अपना नीड़ जान उड़ते हैं और अन्तमें शोकको प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार अब तक इस गीतमें तुम्हें इस देशके इतिहास, भूगोल, जड़, चेतन, सबकी दशाका ज्ञान कराया गया। जैसे वे सब यहाँ हैं, वैसे कहीं नहीं हैं। यही भारत-महिमा है। इसीसे भारत लोकवन्द्य है। इसीसे देवता यहाँ अवतार लेते हैं। अब आगे कहते हैं :—

"हेम कुम्भ ले उषा सबेरे···।"

पंडितजीने न केवल मूलके अर्थको, बल्कि मूल पाठको भी अपने ढंगसे तोड़-मरोड़कर प्रसादकी महिमाका इतना बखान किया था। संस्कृतज्ञ होनेके नाते अशुद्ध अर्थको 'विकल्प' बताना और अशुद्ध पाठको 'पाठान्तर' कहना उनका अपना अधिकार है। अतः उस अधिकारका पूर्ण प्रयोग करके वे प्रसादके साहित्यकी गरिमा और इस देशकी महिमा "गायन्ति देवाः" की भूमिकामें समझाते रहे। पर प्रसादकी काव्यात्मा वहाँ अधिक न ठहरी। वह पंडितजी द्वारा की गई काव्य-मीमांसाका रस लेकर पछताती हुई, यह कहकर अन्तर्हित हो गई :

मैंने भ्रमवश जीवनसंचित
मधुकरियों की भीख लुटाई।

साहित्योद्यानसुमनगुच्छा : एक समीक्षा

(साहित्योद्यानसुमनगुच्छा नामकी पुस्तक, कल्पना कीजिए, अपने साहित्यमें समय-समयपर प्रकाशित हुई है। इस लेखमें उन्हीं आलोचनाओंका संकलन किया गया है।)

सन् १९००

साहित्योद्यानसुमनगुच्छा जिसे आनन्दकन्द-सच्चिदानन्द-निर्द्वन्द्व चरणानुरागी कलिकलुषविरागी मुन्शी दुर्गाप्रसाद कायस्थके आत्मज मुन्शी रामखेलावन मुहर्रिर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड उन्नावने अति प्रयास करके भाषामें लिखा एवं जिसे

श्री गोपीवल्लभकृष्णचन्द्रचरणारविन्दमकरन्दमानसमलिन्द सेठ जदुचन्द पूरनचन्द मारवाड़ीने उदार व्यवहार द्वारा भोजराज श्री रामदासके छापाखाना मुम्बईमें मुद्रित कराया।

सम्वत् १९५७ वि०।

सम्बत एक सहस्र पुनि नवम पंच अरु सात।
गुच्छा हौं अरपित करौं सिकुरि, सहमि, सकुचात॥

आलोचना

कोई आलोचना नहीं हुई।

सन् १९१५

साहित्योद्यानसुमनगुच्छा (कविता-संग्रह)। कविका नाम— मुं० रामखेलावन।

प्रकाशक—भोजराज श्री रामदास, बम्बई।

पृष्ठ संख्या—१७२ ।

कागज—६० × ४०, क्राउनपेजी; मूल्य १२ आना ।

आलोचना

जब यह पुस्तक हमारे निकट आयी तो हमारे मनमें भाव उठा कि :

> **सूर सूर तुलसी ससी उडुगन केशवदास ।**
> **अबके कवि खद्योतसम जहँ-तहँ करत प्रकास ॥**

सो वही भगवती भारती, जिसके चरणोंमें व्यास-कालिदास-प्रभृति कवीन्द्रोंने काव्योपहार चढ़ाये, तुलसी-सूर-केशवदासने बहु-मूल्य भण्डार बढ़ाये, पद्माकर-सेनापति-दासने जिसके झंडे फहराये, वही भगवती भारती काँजीहाउसके मुन्शियोंके हाथों पड़कर सींकचोंमें बन्द सिसक रही हैं । हिन्दीकी चिन्दी उड़ रही है ।

जब कवि महाराजने कृपापूर्वक हमारे पास इसकी एक प्रति भेजी तो यह देखनेका कष्ट न किया कि इसके पन्ने तक न कटे थे । अतः एक घड़ी निरन्तर चाकू द्वारा इसके पन्ने काटने पड़े तथा आलोचनाका उत्साह जाता रहा ।

पुस्तककी छपायी दो कौड़ीकी है । मानों कोदों देकर छपायी गयी है । "साहित्य" का "सहत" तथा "बासी" का "पासी" छपा है । टाइप बड़ा महीन है । पढ़नेके हेतु भगवान् सहस्राक्ष-की उपासना करनी पड़ेगी । मूल्य बारह आना अत्यधिक है । हम पूछते हैं कि पं० रघुबरदयालकी साहित्य-निचय नामक पुस्तक इससे किस अर्थमें निम्न है जो उसका मूल्य छः आना मात्र है ।

हम लेखकसे प्रार्थना करेंगे कि वह पहले साहित्य-दर्पणका अध्ययन करे, पिंगल पढ़े, कवि-समय विचारे, फिर साहित्यके मन्दिरमें आकर अपने गुच्छे चढ़ानेका साहस करे। बिना यह किये कविके लिए ये विचार सार्थक है, यथा :

यद्यपि बहुनाधीषे तथापि पठ पुत्र व्याकरणम् ।

(इसके बाद पूरे कालममें संस्कृतके उद्धरण हैं ।)

सन् १९३०

साहित्योद्यानसुमनगुच्छा

रचयिता—श्री रामलोचन 'रमेश' ।

मूल्य—प्रेम-मात्र ।

आलोचना

साहित्योद्यानसुमनगुच्छा रमेशजीकी कविताओंका प्रथम संग्रह है । इसमें प्रायः भक्ति-पक्षकी रचनाएँ हैं । कुछ राष्ट्रीयताके भावोंसे भी विभूषित हैं । भक्ति-पक्षकी रचनाओंका भाव-पक्ष उठा है पर कलापक्ष गिरा है । राष्ट्रीय कविताओंका कला-पक्ष उठा है पर भाव-पक्ष गिरा है । दोनों मिलकर कलापक्ष तथा भाव-पक्षको समान कर देती हैं ।

कविताओंमें उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अपह्नुति आदि अर्थालंकारों तथा अनुप्रास, श्लेष, यमकादि शब्दालंकारोंका प्रयोग प्राचुर्यसे हुआ है । यमकके लिए उदाहरणार्थ :—

"मैं नहीं जगायौ मोंहि मैन ही जगायो है ।"

······उल्लेख्य है । राधिका कहती हैं कि हे प्यारे कृष्ण, तुमको मैंने नहीं जगाया, प्रत्युत् मुझे स्वयं "मैन" अर्थात् कामदेव

ने जगाया है। 'मैन' का ऐसा उत्तम प्रयोग आजतक नहीं हुआ है। हम पंडित रामचरित उपाध्यायके विषयमें तो नहीं कह सकते, पर आजकलके किसी छायावादी कवि नामधारी जन्तुमें ऐसे प्रयोग दिखानेकी क्षमता नहीं मिल सकती।

इस ग्रन्थकी भाषा खड़ी है पर यदा-कदा अवधी, ब्रजी आदि के भी प्रयोग मिलते हैं। मानो प्रयागमें त्रिवेणीका आनन्द है।

पुस्तक भक्तजनोंके हितकी है। राष्ट्रीय कविताओंके विषयमें हम यह अवश्य कहेंगे कि प्रणेता राष्ट्रीय कविता लिखना नहीं जानता। उसमें मौलिकताका अभाव है। अर्थात् बहुतसे भाव चोरीके हैं। नीचे हम इस ग्रन्थके १२५ उद्धरण देकर और इतर कवियोंसे उनका मिलान करके स्वकथनकी पुष्टि करेंगे।

(इसके नीचे २५० उद्धरण हैं।)

सन् १९४५

साहित्योद्यानसुमनगुच्छा

प्रणेता—राम के० लवाणी। प्रकाशक—भोजराज-निकेत, बाम्बे–४।

आलोचना

इस पुस्तकका इतना पुरातनवादी नाम रखनेका कारण भी श्री लवाणीने भूमिकामें इस प्रकार दिया है :—

"रूढ़ियोंकी कमज़ोरी दिखानेके लिए ज़रूरी है कि उन्हीं रूढ़ियोंके सम्पर्कमें आकर उनका खोखलापन दिखाया जाय...।"

पुस्तकमें साहित्यकी रूढ़ियोंका खोखलापन दिखाया गया है। पर प्रश्न यह है :

साहित्य क्यों ? रूढ़ियाँ क्यों ? उनका खोखलापन क्यों ?

इस प्रश्नका अध्ययन करनेके लिए ज़रूरी है कि हम एक और प्रश्न लें :

साहित्यकी स्थापना किसलिए ?

मरणोन्मुखी संस्कृतियोंके इस अन्धकारमय श्मशानमें इन प्रश्नोंका उत्तर खोजना पड़ेगा।

जीन पाल सार्त्रने अपनी रचनाओंमें इसी श्मशानके सम्पर्कसे उत्तर ढूँढ़नेकी चेष्टा की है। पर उसके सिद्धान्त जीवनके सामने एक प्रश्न चिह्न बनाकर उसे जैसेका तैसा छोड़ देते हैं।

पर उत्तर कहाँ है ?

उत्तर हमारी और तुम्हारी आत्माकी प्रतिध्वनिमें हैं।

इसीलिए जब इलिया एहर्नबर्ग ने अपने आपको सम्बोधित करते हुए कहा, "मैं कला और जीवनके कोहरेपर सर्चलाइट डालूँगा और तुम्हारा पथ प्रशस्त करूँगा···।" तबसे आजतक साहित्य अपनी गतिसे चलता आया है।

इसी विचारसे श्री लवाणीके संग्रह पर विचार किया जाय।

(इसके बाद आलोचक केपटाउनसे ग्रीनलैण्ड तकका चक्कर लगाने चला गया और फिर लौटकर कोरियाकी ओर बढ़ने लगा। श्री लवाणी अपना संग्रह लिये शून्यकी ओर देखते रहे और आलोचकने आलोचनाके आगेके दस पृष्ठोंमें उनकी ओर मुड़कर भी नहीं देखा।)

सन् १९५५

साहित्योद्यानसुमनगुच्छा, नं० १ ।

(नई कविता)

प्रस्तुतकर्त्ता—रामांग लवणायुध ।

नई कविताकी दूकान, बम्बई ।

मूल्य—८ रुपया ।

आलोचना

रामांग लवणायुधके इस वर्षके प्रयोग उक्त पुस्तकमें मिलते हैं । यह संग्रह बहुत-सी दृष्टियोंसे साहित्यिकोंको आकर्षित करेगा ।

इसमें १२ कविताएँ हैं । प्रत्येक कविता कविके मानसिक चिन्तनका प्रतीक है । जो कविताएँ चिन्ता-शृंखलाओंकी महत्त्वपूर्ण कड़ियाँ हैं, उनके शीर्षक हैं, "फुस्-फुस्, फेफड़ा और निशान्त गीत, "राधेश्याम कथावाचकके नाटक", "श्री डाइमेन्शन्स", "अभी बहियाँ न पकड़ो", और "तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।"

आवेश, कल्पना तथा अधिष्ठितिके आयामोंपर लवणायुधका कवि अपने प्रयोग करता है । उसका आवेश युद्धोत्तर कविका आवेश है । पूर्ववर्ती कवियोंके आवेग तथा उसके आवेशमें अन्तर है । आवेग कल्पनाको स्वतःतन्त्र उपादान नहीं मानता है । इसी अमान्यताका परिणाम है कि तत्कालीन काव्यमें अनुभूतिके अतिरिक्त और कुछ मिलना दुस्साध्य है । लवणायुधका आवेश कल्पने-

तर है। वह अपने आपमें सम्पूर्ण है। "राधेश्याम कथावाचकके नाटक" में यह प्रवृत्ति स्पष्टतः देखी जा सकती है :

राधेश्याम !

राधेश्याम !!

राधेश्याम !!!

गोकुलकी रातें रँगीली

रास, रस, उल्लास, विलास

(बरेलीकी परिधि मैंने छू ली।)

कविताके क्षेत्रमें नये मानोंकी प्रतिष्ठा करनेका प्रयास उक्त पंक्तियोंमें देखा जा सकता है।

अधिष्ठितिका प्रयोग केवल टेकनीककी दृष्टिसे है, किन्तु···।

(यह लेख अधूरा है। Substi Fute: ६: महीने बाद साहित्योद्यानसुमनगुच्छा (नं० २) प्रकाशित होनेको है। उसकी आलोचनाके साथ इस निबन्धका शेषभाग भी देखा जा सकता है।)

शीर्षकोंका शीर्षासन

मेरे पड़ोसी बाबू रामजीवनको पुस्तकोंसे बड़ा प्रेम है। उसी प्रेमके वशीभूत होकर उन्होंने एक पुस्तकालय बनवाया है। उसमें खरीदकर पुस्तकें रक्खी हैं। उन पुस्तकोंको पढ़नेके लिए एक पढ़ा-लिखा आदमी रक्खा है जो लाइब्रेरियन कहलाता है। पुस्तकालय एक दर्शनीय स्थान है। बड़ा कमरा है। दीवारोंसे सटी हुई, ख़ूबसूरत अलमारियाँ हैं। उनमें पुस्तकें हैं। फ़र्शपर क़ीमती कालीन है। चारों कोनोंमें छोटी-छोटी गोल मेज़ों और गद्देदार कुर्सियोंकी व्यवस्था है। बीचमें एक बड़ी मेज़ है। उसपर ताज़े फूलोंका एक गुलदस्ता है। पुस्तकालयमें प्रवेश करते ही कोई प्रेमगीत गानेकी, कॉफ़ी पीनेकी, ब्रिज खेलनेकी, या सो जानेकी इच्छा भी मनमें प्रवेश करती है।

बाबू रामजीवन प्रतिमास पुस्तकें मँगाते हैं। इस बार उन्होंने सूचीपत्रके सहारे नागपाश, श्मशान और प्रेत, रातकी रानी और आराधना नामक पुस्तकें मँगायी हैं।

आज मुझे देखते ही उन्होंने दुखी स्वरोंमें हिन्दी लेखकोंकी शिकायत की। बोले कि मुझे शीर्षकोंने ठगा है। कहने लगे, मैं 'नागपाश' को उपन्यास समझता था। वह साँपोंके जीवनका एक वैज्ञानिक अध्ययन है। 'श्मशान और प्रेत' को मैं पुनर्जन्मवाद या तान्त्रिक साहित्यकी पुस्तक समझता था। उसमें प्रेमपरक एकांकी नाटक हैं। 'रातकी रानी' उपन्यास नहीं है : वह चुड़ैलोंपर लिखी

गई पुनर्जन्मवादकी एक पुस्तिका है। 'आराधना' कविता-संग्रह नहीं है, यजुर्वेदीय संध्योपासनपर लिखा हुआ एक ग्रन्थ है। पता नहीं, ये भ्रामक शीर्षक किस कारण अपने यहाँ पनप रहे हैं?

मैंने समझाया, 'प्रियवर, इन्हें भ्रामक बताकर तुम अपनी अल्पज्ञता प्रचारित करते हो। एक समय था जब मैं भी यही कहता था। मैंने 'शेखर : एक जीवनी' पढ़ी है। वह उपन्यास है। खेती सीखनेके लिए मैंने अज्ञेय-रचित 'हरीघासपर क्षणभर' पढ़ा। उसमें कविताएँ हैं। बाग़बानी सीखनेके लिए लक्ष्मीनारायण-लालका 'काले फूलका पौधा' पढ़ा। वह उपन्यास है। पुनर्जन्मवाद-की मीमांसामें मैंने इलाचन्द्र जोशीका 'प्रेत और छाया' पढ़ा। वह भी उपन्यास है। बच्चोंके पढ़नेके लिए प्रसादकी 'तितली' और लक्ष्मीनारायणलालका 'बयाका घोंसला और साँप' मँगाई। पर उन्हें बच्चोंने नहीं, नर-नारीके सम्बन्धोंके ज्ञाता बुज़ुर्गोंने ही पढ़ा। इसीसे मुझे अब धोखा नहीं हो सकता। मैं अब समझ गया हूँ।'

वे बोले, 'बन्धुवर, क्या समझ गये हो? मुझे भी समझाओ?'

मैंने कहा, 'शीर्षक देनेके लिए लेखक पहले आसन सँभालता था : शीर्षक उसे स्वयं सूझ जाता था। अब उसी कामके लिए उसे शीर्षासन करना होता है।'

श्वेतकेतुकी-सी जिज्ञासासे वे बोले, 'इसे उदाहरण देकर समझाइए।'

तब मैंने उदाहरण देकर समझाया। औरोंके लाभार्थ उसीका वर्णन करता हूँ।

उर्दू काव्यमें पिंगलको समझनेके लिए 'फ़ायलुन मफ़ाईलुन', 'फ़ायलुन मफ़ाईलुन' आदिका सहारा लिया जाता है। जैसे : फ़ायलुन फ़ायलुन फ़ायलुन फ़ायलुन। (ख़िदमते हिन्दमें जो कि मर जाँयगे।) या 'मफ़ाईलुन मफ़ाईलुन मफ़ाईलुन मफ़ाईलुन।' (उरूजे कामयाबीपर कभी हिन्दोस्ताँ होगा।)

उसी प्रकार शीर्षकोंका शीर्षासन समझनेके लिए एक पंक्ति ले लीजिए :

बन्दर क्या जाने अदरखका स्वाद ?

इसीके आधारपर शीर्षकोंकी सब तरकीबें इस प्रकार देखी जा सकती हैं।

पहली तरकीब

दो-टूक या बेलौस शैलीमें शीर्षक दे देना है। इसका उद्देश्य पुस्तकके विषयको बड़ी ईमानदारीसे समझा देना था। खरा सौदा था। शीर्षक इस प्रकार होते थे :

(१) बन्दर तथैव च अदरखजन्यस्वादोपाख्यान।

(२) बन्दरके अदरखस्वादके अज्ञानकी कहानी।

इस प्रकारके ग्रन्थ हैं :

(१) नासिकेतोपाख्यान

(२) रानी केतकीकी (या गोरा-बादलकी) कहानी।

आगे चलकर इस शैलीपर बाणभट्टका प्रभाव-सा पड़ा। नतीजा यह हुआ कि लेखकगण शीर्षकसे ही अपने संस्कृत-प्रेमका आल्हा सुनाने लगे। तभी इस प्रकारके शीर्षक देखनेमें आये :

(१) बन्दरादरख

(२) अदरखस्वाद क्या जान ।

इस प्रकारके ग्रंथ हैं :

(१) बघेलवंशागमनिर्देश ।

(२) धाराधर-धावन ।

(३) शरद-समागत-स्वागत ।

कभी-कभी यह भी सिद्ध कर दिया जाता था कि लेखक अनुप्रासको घसीटनेका तरीका जानता है। तब शब्दोंकी मरोड़ यों चली :

(१) बन्दरकी बदरख

(१) अदरखका आद

ऐसे ग्रन्थ हैं :

(१) नावके पाँव

(२) रंगमें भंग

(३) विकट-भट

(४) प्रणवीर प्रताप

दूसरी तरकीब

कालान्तरमें अनुभव हुआ कि बेलौस या दो-टूक शीर्षक प्रायः दूकानका हालचाल बरामदेसे ही बता देते हैं, इसलिए शीर्षक रहे तो सच्चा और खरा, पर उसकी लम्बाई छाँट दी जाय। साथ ही पाठक यह न जान पायें कि पुस्तक उपन्यास है या कविता या नाटक ।

फिर तो एकनामी शीर्षकोंकी बाढ़-सी आ गयी।

(१) बन्दर

(२) अदरख

(३) स्वाद

इस आधारके शीर्षक हैं :

(१) कंकाल

(२) साकेत

(३) दिव्या

(४) परिमल आदि।

तीसरी तरकीब

इसका उद्देश्य लोगोंको चौंका देना था ताकि पाठक घबराकर जल्दीसे किताब ख़रीद बैठें। तभी कुछ शीर्षक बदतमीज़ीके सवालोंपर लिखे गये :

(१) क्या जाने अदरख ?

(२) बन्दर क्या जाने ?

ऐसे ग्रन्थ हैं :

(१) ?,

(२) दोषी कौन ?

(३) हम क्या करें ? आदि।

चौथी तरकीब

यह तरकीब विशेषरूपसे प्रगतिवादके हल्लेमें अपनायी गयी। इसमें शब्दोंका प्रयोग गुटबन्दीके साथ करते हैं। दोसे लेकर

तीन शब्दों तकके गुट बन सकते हैं। इससे व्यक्तिवादकी पराजय और समूहवाद या जनवादकी विजय सिद्ध होती है। यथा :

(१) बन्दर और अदरख
(२) बन्दर और अदरख-जन्य स्वाद।

इसके वजनपर पढ़िए।

(१) नाश और निर्माण
(२) फूल और काँटे
(३) चाँद और टूटे हुए लोग आदि

तीन शब्दोंके गुट इस प्रकार हैं :

(१) सागर, लहरें और मनुष्य

इस आधारके ग्रन्थ हैं :

(१) बन्दर, अदरख और स्वाद
(२) मुहब्बत, मनोविज्ञान और मूँछदाढ़ी।

पाँचवीं तरकीब

लोकवादी परम्परामें हम बिना अनुप्रास या किसी अन्य अलंकारके साफ़-साफ़ भाषामें शीर्षक रख देते हैं। पहली तरकीबसे इसमें यही अन्तर है कि देखनेमें साफ़-सुथरा, भोला-भाला, लोकभाषाभाषी शीर्षक भी हमें आज जी खोलकर धोखा दे सकता है। यथा :

(१) बन्दरका अदरखी स्वाद
(२) बन्दरकी अदरख और उसका स्वाद।

इसके साथ पढ़िए :

(१) काले फूलका पौधा

(२) सूरजका सातवाँ घोड़ा आदि ।

(ये किताबें, जैसा नामसे स्पष्ट है, वैसी नहीं हैं। न ये शिशु-कार्यालयमें बिकती हैं, न प्राइमरी स्कूलोंमें चलती हैं ।)

छठी तरकीब

इसके सहारे लेखक विभक्तियोंका प्रयोग छोड़कर दो अप्रासंगिक बातोंको एकमें मिला देता है और विरामोंके सहारे अर्थ डालनेकी कोशिश करता है। डाकघर वाले इसे तारकी भाषा कहते हैं जैसे :

(१) बन्दर : एक स्वाद

(२) अदरख : एक बन्दर

पठनीय है :

(१) प्रगतिवाद : एक समीक्षा

(२) शेखर : एक जीवनी

(३) कामायनी : एक अध्ययन आदि ।

सातवीं तरकीब

पूरी कहावत या किसी काव्य-उद्धरणको शीर्षकमें लुटा देना :

(१) बन्दर क्या जाने अदरखका स्वाद ?

ऐसे ग्रन्थ हैं :

(१) अन्धेर नगरी चौपट राजा

(२) सूने अँगन रस बरसै

इस तरकीबों तथा ऐसी कई और तरकीबोंके सहारे जो शीर्षक हिन्दीमें आ रहे हैं उनमें कई आलंकारिक प्रवृत्तियाँ भी पनप रही हैं। उनमें मुख्य ये हैं :

(१) कुछ लेखक भूत-प्रेतोंसे सहज सम्पर्क स्थापित करके अपने :ग्रन्थोंको शीर्षकमात्रसे भयावह और रोमांचकारी बना देते हैं। पंचभूत, कंकाल, मुर्दोंका देश, मुर्दोंका टीला, प्रेत और छाया आदि पुस्तकें दिनमें ही हाथमें ली जा सकती हैं।

(२) कुछ लेखक प्रतीकोंका प्रयोग इस चतुरतासे करते हैं कि उनका रहस्य समझनेके लिए कभी-कभी भोले पाठकोंको पूरी किताब पढ़नी पड़ती है। गुनाहोंका देवता, नागफनीका देश, अन्धाकुवाँ इसी कोटिके ग्रन्थ हैं।

(३) चमकदार नाम रखकर ग्रंथोंको चमकानेका भी एक रिवाज है, क्योंकि यह सब नहीं जानते कि सब चमकदार वस्तुएँ सोना नहीं होतीं। स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि, रश्मि, सप्तकिरण, सबेरा कुछ ऐसे ही नाम हैं।

पर यह सब ऊँचे-ऐंठदार साहित्यमें ही देखनेको मिलता है। सड़कोंके किनारे बिकनेवाले सच्चे जनवादी साहित्यमें ये सब दोष अभी नहीं घुस पाये हैं। वहाँ आपको चंगुल चिड़ियामें उसी चिड़ियाका वर्णन मिलेगा जो आपको चंगुलमें लेकर उड़ सकती है। कलंकी अवतारमें कलंकी अवतार, जो कहीं हो चुका है, उसका हाल मिलेगा। किस्सा साढ़े तीन यारमें जितने यार बताये गये हैं उससे कम निकलें तो दाम वापस। गोपालगारीमें

जाति विशेषमें प्रचलित गालियोंका संकलन होगा। चाहे बेलाका गौना हो चाहे बारहमासा, आप जो माल खरीदिएगा उसमें धोखा न होगा।

यह दूसरी बात है कि पहलवान छाप या दूसरे प्रकारकी नौटंकीमें दो शीर्षक मिलें पर उनमें भी एक शीर्षक उच्चकोटिकी प्रतीकात्मक शैलीपर होगा और एक जनभाषामें। संगीत-ध्रुव उर्फ़ छलावा परी, संगीत हरिश्चन्द्र उर्फ़ सच्चाईका नतीजा जैसे शीर्षक आपको कभी भुलावेमें नहीं डाल सकते। हमारे साहित्यिकों-को इस स्वस्थ और सच्ची परम्पराका अनुसरण करना चाहिए। जहाँ वे कोई आलंकारिक शीर्षक दें वहीं 'उर्फ़' का प्रयोग पाठकों-के लिए बड़ा हितकर सिद्ध होगा। तब ऐसे नाम आ सकते हैं :

(१) चित्रलेखा उर्फ़ पाप-पुण्यका पचड़ा।
(२) मैला आँचल उर्फ़ पूर्णियाँका प्रताप।

पाठकोंको भी चाहिए कि धोखेसे बचनेके लिए अभिधाके साथ ही साथ कुछ व्यंजना और लक्षणाका भी बोध प्राप्त कर लें। नहीं तो, बिना समझे, बाबू रामजीवनकी भाँति यदि उन्होंने कोई कहानी-संग्रह बाग़वानी सीखनेके लिए ख़रीद लिया और बादमें वे इस संग्रहकी शिकायत करते फिरे तो हो सकता है कि उत्तरमें लेखक इसी 'मफ़ाइलुन' का प्रयोग करे :

बन्दर क्या जाने अदरख का स्वाद ?

संगीत

सकल बन ढूँढूँ : एक सांगीतक

बाबा अम्बिकानन्दनशरणने अपनी दाढ़ीपर हाथ फेरते हुए गद्‌गद कण्ठसे कहा, "धन्य है ! धन्य है प्रभु, आपने ऐसा संगीत सुनाया है कि धन्य है ! धन्य है !"

इसके पहले नगरकी प्रसिद्ध गायिका सुरमा देवीने लगभग घंटेभर तक ख़यालका गायन किया था। ख़यालके बोल थे, "सकल बन ढूँढूँ ।" सुरमादेवीके गानेकी विशेषता यह थी कि जो उसे सुनकर नहीं समझ पाते थे वे उनको देखकर समझ जाते थे। इसी नीतिसे उन्होंने ऐसी-ऐसी मुद्राएँ दिखाईं कि साफ़ ज़ाहिर हो गया कि वे विरहिणी हैं और किसीको ढूँढ़नेके लिए जंगल-जंगल मारी-मारी फिर रही हैं। वे बार-बार आसमानकी ओर देखकर कहती थीं, "सकल बन ढूँढूँ ।" इससे जान पड़ता था कि संसारके सब जंगल आसमानमें ही उगे हैं और उनका प्रेमी वहीं कहीं छिपा है। जब कभी वे उपेक्षाके साथ तबले और तानपूरे-वालेकी ओर देखतीं तो लगता मानो वे जंगलके किनारे-किनारे घूमने-फिरनेवाले सियार हैं। कभी-कभी वे श्रोताओंकी ओर बड़ी ही भयपूर्ण मुद्रा बनाकर देखतीं जिससे जान पड़ता कि वे जंगलमें घूमनेवाले भालू या शेर हैं। फ़र्शपर बिछे हुए क़ालीनपर वे इस प्रकारसे हाथ-पैर पटकतीं कि लगता यह क़ालीन नहीं है बल्कि उसी जंगलकी कँटीली घास है। इस प्रकार वनकी भयंकरता दिखा-

कर सुरमादेवी बार-बार करुण आवाज़में चीख़तीं, "सकल बन ढूँढ़ूँ।" "सकल बन ढूँढ़ूँ।"

सुननेवालोंमें बाबू राधाकान्तकी परिहास-भावना बहुत ही विकसित थी। इसी कारण सभ्य समाजमें वे मूर्ख समझे जाते थे और प्रायः उनकी ओछी तबीयतकी निन्दा हुआ करती थी। उन्होंने बाबा अम्बिकानन्दनशरणसे हँसकर कहा, "धन्य है। बाबाजी, धन्य है। इस पदमें सुरमादेवीने जो ब्रह्म-चर्चा की है, उसे योगी ही समझ सकते हैं।"

बाबाजीने राधाकान्तको एक बार तिरस्कारके साथ देखकर फिर गम्भीरताके साथ कहा, "सत्य वचन हैं प्रभु, यह ब्रह्म-चर्चा ही है। सकल बन हैं क्या, अखिल ब्रह्माण्डमें व्याप्त चौरासी कोटि योनियोंका प्रपंच है जो, सोई सकल बन है। परमात्मासे मिलनेको परम व्याकुल है चित्त जिसका उन योनियोंमें भ्रमण करती हुई वह आत्मा ही प्रेमी-रूप है। जिससे मिलनेको चित्त चलायमान है वह परमात्मा ही प्रेमिका रूप है। उसी भावमें ओतप्रोत है जो सोई यह पद है। उस पदावलीके गायनमें आकण्ठ मग्न हैं जो वे सुरमादेवी ही इस ब्रह्म-चर्चाकी प्रवर्तिका हैं। इस कारणसे वे धन्य हैं।"

इस बार प्रोफ़ेसर देवानन्दने कहा, "आप अपनी जगह सत्य कहते हैं, पर सच बात तो यह है कि ब्रह्म-चर्चा इस प्रकार नहीं होती। यह ब्रह्मचर्चा नहीं है। इस पंक्तिमें विप्रलम्भ शृंगारका वर्णन है। इसी पंक्तिके गवाक्षसे भारतकी प्राचीन संस्कृति झाँक

रही है। हमारी सनातन संस्कृति और तपस्याका इतिहास इसी "सकल बन ढूँढ़ूँ" में निहित है।"

इस बार सुरमादेवीने आश्चर्यसे प्रोफ़ेसर देवानन्दकी ओर देखा, बोलीं, "सो कैसे प्रोफ़ेसर साहब ?"

प्रोफ़ेसर साहब भारतीय इतिहास एवं संस्कृतिके प्रकाण्ड पण्डित हैं। प्रकाण्ड इसलिए कि जहाँ पण्डित होता है वहाँ प्रकाण्ड आ ही जाता है। अतः वे बोले, "आपने सुना कि विरहिणी नायिका नायकको समस्त वनोंमें ढूँढ़ती हुई घूम रही है। अब प्रश्न यह है कि वह नायकको ढूँढ़नेके लिए बनमें ही क्यों गई, नगरमें क्यों नहीं आई ? इसका उत्तर हमारी प्राचीन आरण्यक संस्कृतिमें मिलता है। नायिकाको यदि आज कहीं अपने नायकको ढूँढ़नेके लिए जाना पड़े तो वह कहाँ जायगी ? कॉफ़ी हाउसमें, रेस्ट्राँमें, क्लबमें, बारमें। परन्तु यह हमारी संस्कृति नहीं है। हमारी संस्कृतिमें तो नायक पहले पचीस वर्ष तक ब्रह्मचर्यपूर्वक वनोंमें ही निवास करता है। फिर गृहस्थाश्रममें प्रवेश करता है। फिर वाणप्रस्थी हो जाता है अर्थात् वनकी ओर पुनः प्रस्थान करता है। "सकल बन ढूँढ़ूँ", यह पद हमारा ध्यान इसी आरण्यक संस्कृतिकी ओर खींचता है। और धन्य है वह बाला वियोगिनी नायिका जो अपने प्रियसे मिलनेके लिए वनोंमें भटकती है!"

कहते-कहते प्रोफ़ेसर साहब भाव-विभोर हो उठे। तालाबमें मुँह डालकर पानी पीते हुए बैलकी तरह कुछ रुककर और फिर एक विकट उच्छ्वास निकालकर वे फिर पहलेकी भाँति भावलीन हो गये।

प्रोफ़ेसर साहबकी बातसे कॉमरेड शंकरका घोर अपमान हुआ। अपने ज़मानेके वे घोर क्रान्तिकारी रह चुके थे। अब चूँकि उनका ज़माना ख़त्म हो चुका था इसलिए वे साँस लेते थे और जीते थे और इसी आज़ादीको ग़नीमत मानते थे। पर जहाँ इस प्रकारकी बहस हो रही हो वहाँ चुप रहनेमें उनका अपमान था। इसलिए उन्होंने चीख़कर कहा, "यह सब निरी बकवास है प्रोफ़ेसर साहब ! ये गीत जन-जागरणके गीत हैं, इन्हें ग़द्दार नहीं समझ सकते। इन्हें वही समझ सकते हैं जो 'सरपर क़फ़नको बाँधे क़ातिलको ढूँढ़ते हैं।' इसमें हीरोइन, ज़ाहिर है कि, गाँवकी भोली-भाली लड़की है। हीरो रेवल्यूशनरी है। वह अण्डर-ग्राउण्ड होकर जंगलमें जा छिपा है। हीरोइन अपने हीरोसे, अपने फ्रेण्ड, फ़िलास्फ़र और गाइडसे मिलनेके लिए जंगलमें जाती है। किस लिए ? जानते हैं आप ? उस तहरीकमें, उस मूवमेण्टमें, जान डालनेके लिए। 'सकल बन ढूँढूँ !' आपने 'पथेर दावी' नहीं पढ़ा ? पढ़ लीजिएगा !"

कॉमरेडकी बात सुनकर महाकवि मयूरजी अगाध आत्म-विश्वासके साथ मन्द-मन्द हँसने लगे और बिना कहे ही कह ले गये कि ऐसी बातके कहने व सुननेवाले दोनों ही निर्बोध हैं। सुरमादेवीने पूछा, "क्या हुआ मयूर जी ?"

मयूरजीकी आँखोंमें एक ऐसी चमक टिमटिमाने लगी जो कि कभी-कभी पुरानी बैटरी वाली टार्चमें बटन दबानेपर अचानक उभर आती है।

मयूरजी बोले, "देवि, यह सब व्याकरण ही की माया है।

इसीलिए सबपर ऐसा भ्रम छाया है। इस गीतमें तो नायिका है यही कहती 'मैं प्रिय सकल बनकर तुम्हें ढूँढ़ती। जिस रूपमें तुम मिलो वही बनाऊँगी। सब कुछ बनूँगी तभी तो तुम्हें पाऊँगी।"

मयूरजी कहते गये, "कैसा है उदात्तभाव! इसे भी तो देखिए। पहलेके किसी कविका कहा परखिए। बोली नायिका "तुम्हें सभी विधि रिझाऊँगी, सैंया, तोरी गोदी फुलगेंदा बनि जाऊँगी।" आगे कहता है कवि "सैंया, तुम्हें भूख जो लगेगी तो लड्डू बालूसाही बन जाऊँगी।" अथवा, 'हे सैंया, तुम्हें प्यास जो लगेगी तो गंगा-जमुना औ सरसुती बनि जाऊँगी।' ऐसा ही किसीने सिनेमामें भी कहा था कि, 'फूल हो सजन, तुम मेरो मन भँवरा।' इस गीतमें भी देखि, नायिका तैयार है नायकके अनुरूप रूपको बनानेको। प्रेमकी, समर्पणकी यही पराकाष्ठा है। यही है आदर्श, यही भारतीय काव्य है। सकल अर्थात् सभी बनकर ढूँढूँगी।'

इसपर श्रेष्ठ समालोचक, महाकवि मयूरके पुराने दुश्मन, डॉ० दीपधरने कहा 'अरे मयूर साहब, आप सीधी-सी बात क्यों नहीं समझते? सब आपके हुक्मका करिश्मा है। जैसे गीदड़की शामत आनेपर वह शहरकी ओर जाता है वैसे ही रीतिकालकी नायिका अपनी शामत आनेपर जंगलकी ओर जाती है। तभी आपने सुना होगा कि अभिसारिका काँटोंको कुचलती है, साँपोंको रौंदती है। वैसे, पहले आप जैसे मयूर कभी-कभी उसकी चोटीको साँप समझकर खींचते थे, चकोर मुँहपर चन्द्रमाके धोखेमें चोंच मारते थे। तोते ओठोंका बिम्बाफल उड़ा ले जाना चाहते थे। पर वह जंगलमें जाती ही थी। आप जैसे

कवियोंका हुक्म जो था। बादमें आपके हुक्मसे कुछ नायिकाएँ क्षितिजके आस-पास आ गईं। कुछको मज़दूरोंकी बस्तियोंमें जाने का हुक्म मिल गया। ये तो सब आपके हुक्मकी बाँदियाँ हैं। जहाँ चाहिए, वहीं चली जायेंगी। क्यों सुरमा देवी ?"

सब सुरमा देवीके मुँहकी ओर देखने लगे। तब उन्होंने धीरेसे मुसकराकर कहा, "हुकुमकी क्या बात है, यह तो देश-देशके रिवाजपर चलता है। अपने देशमें जंगलका ही चलन है, तो मयूरजी क्या करें ? अपने यहाँ तो घर है, या जंगल है, और है ही क्या ? यह तो देश-देशपर है।"

इसपर बाबा अम्बिकानन्दनशरणने अपनी दाढ़ीपर हाथ फेरते हुए गद्गद कण्ठसे कहा, "धन्य है ! धन्य है ! अब इसी बातपर देसका आलाप हो जाय प्रभू। धन्य है ! धन्य है !"

कला

पुराना पेण्टर और नई क़लम

प्रोफ़ेसर पन्नालाल निशात थिएट्रिकल कम्पनीके प्रसिद्ध चित्रकार रह चुके हैं। उनके रँगे हुए परदोंकी रंगीनी देखनेके लिए किसी ज़मानेमें लोग बम्बईसे कलकत्ता जाते थे, और यदि कम्पनी बम्बईमें हुई तो कलकत्तासे बम्बई आते थे। परदोंपर बनी हुई तस्वीरोंके क्या कहने! कहीं काले पहाड़ बने हुए हैं, लाल सूरज निकल रहा है, हरे जंगलके ऊपर सफ़ेद भूरे बादल हैं और वहीं पहाड़ोंकी तलहटीमें नदी बह रही है, सफ़ेद घाट बना है, रंग-बिरंगी औरतें नहा रही हैं, पानी नीला है (क्या मजाल कि उसमें भी बादलोंकी रंगीनीका अक्स पड़ जाय)। वहीं मटमैली सड़क बनी हुई है जिसपर दो जेंटिलमैन, यानी कोट, पतलून, लम्बी मूँछ, छड़ीधारी दो जवान आदमी टहल रहे हैं, क्योंकि, जैसा बताया गया है, सवेरेका सुहावना समय है, या जैसा आप समझ ही सकते हैं, पास ही औरतें नहा रही हैं।

पर अब उन पर्दोंका ज़माना गया। उन नाटकोंकी जगह सिनेमाने ले ली और उन नाटक-कम्पनियोंके स्थानपर स्कूल-कालेजोंकी टीमें आ गई जो ग़रीबीके मारे पर्दोंका काम अभिनयके सहारे चलाती हैं। इसलिए प्रोफ़ेसर साहब अब रिटायर होकर अपने घरपर बैठकर तस्वीरें बनाने लगे हैं जिनमें दरियाका किनारा, ताड़के पेड़, लकड़ीके पुल, पूनोंका चाँद या उगता हुआ सूरज—ये चीज़ें बहुतायतसे पाई जाती हैं। ये तस्वीरें आठ

आनेसे आठ रुपये तक बिकती हैं और चूँकि प्रोफ़ेसर साहबके हाथमें हुनर है इसलिए उन्हें पेट पालनेके लिए किसीका मोहताज नहीं होना पड़ता है। हमारे नगरमें ये चित्र बहुत जनप्रिय हो चले हैं और तम्बोलियोंकी दूकानों तकपर लम्बे-लम्बे ढाँचोंमें मढ़े हुए पाये जा सकते हैं।

अतः स्वाभाविक है कि इतने सीनियर और जनप्रिय कलाकार होनेके कारण प्रोफ़ेसर पन्नालाल कलाके समीक्षक भी हो जायँ। इसीलिए जब कभी वे मेरे पास आ जाते हैं तो आधुनिक चित्र-कारोंकी थोड़ी-बहुत आलोचना भी सुना जाते हैं और अपनी अवस्थाकी ओर संकेत करके कह जाते हैं कि गुन ना हिरान्यो बल्कि गुन गाहक ही हिरान्यो है।

कल आते ही उन्होंने मुझसे पूछा "अजी, यह जामिनीराय कौन है? इम्पिरियल कम्पनीमें एक राय राय करके आर्टिस्ट रहा करता था, वही तो नहीं है?"

मैंने आदरसे कहा, "नहीं ऐसा नहीं हो सकता। जामिनीराय तो बंगाली हैं।"

वे बोले, "तो बंगाली तो वह भी था। हो सकता है कि उसी रायके यह भी कोई हों।"

मुझे जामिनीरायका इम्पीरियल कम्पनीके आर्टिस्टसे कोई सम्बन्ध रखना अच्छा न लगा। अतः मैंने बिलकुल निषेधात्मक मुद्रामें सर हिलाकर कहा, "नहीं, जामिनीराय उसके कोई नहीं हैं।"

प्रोफ़ेसर पन्नालाल मेरे निकट आकर बैठ गये और बोले, "अरे भाई, दिल्ली गया था। तस्वीरोंकी नुमायश जब देखी तो चारों तरफ़ जामिनीराय ही जामिनीराय नज़र आये। पर तस्वीर ऐसी थीं कि हम तो नज़र नीची करके भाग निकले। हम तो, साहब, ठहरे आर्टिस्ट आदमी, भद्दी तस्वीर एक बार निगाहमें चढ़ गई तो हाथसे वही उतरकर काग़ज़पर आयेंगी।"

मैंने आश्चर्यसे पूछा, "इतनी भद्दी थीं ?"

उनकी आवाज़ कुछ और चढ़ी, "भद्दी ? भाई साहब, भद्दी या भली तो तब कहें जब वे असल तस्वीरें हों।"

मैंने उनकी बात काटकर शास्त्रार्थवाले लहजेमें कहा, "प्रोफ़ेसर साहब, इम्पीरियल वालेकी बात छोड़िए। मुझसे तो इन जामिनीरायकी बात कीजिए। आपको इनकी चित्रकलामें कौनसी कमी मालूम पड़ी ?"

वे बोले, "लो भाई, मैं कमी क्यों बताने लगा ? सब अपने हाथके हुनरपर जीते हैं। पर जामिनीराय जब तस्वीर बनायें तब तो कमीका ज़िक्र हो। वे तस्वीरें हैं कहाँ ? गाँवकी औरतें जैसे दरवाज़ेपर हाथी, घोड़े या सिपाही बना देती हैं, वैसे ही बेढंगे नक्शेसे बने थे। अब उन्हींको तस्वीरें कहिए तो मेरी तस्वीरों-को क्या कहिएगा ?"

मैंने समझाते हुए कहा, "प्रोफ़ेसर साहब, जामिनीरायने सचमुच लोकजीवनसे प्रेरणा पाई है और···।"

पर अब तक वे आगे निकल चुके थे। कहते रहे, "अरे साहब, यह लोकजीवन भी कोई आर्टिस्ट है। वही मद्दाबली

कम्पनी वाले हरजीवनका भाई होगा। हरजीवनको ही क्या आता था ?"

ऐसी बात सुनकर स्वाभाविक था कि मैं चुप हो जाता। अतः विजयके सन्तोषमें पराजितको अपनी सदाशयतासे प्रभावित करनेवाली, नर्म आवाज़में वे बोले, "देखिए, बहस हरजीवन या लोकजीवनपर नहीं, जामिनीरायपर है। उनकी एक तस्वीर याद है 'काला घोड़ा'। अब क्या बताऊँ उसके एक ही आँख थी और वह भी आँवले-सी गोल-गोल, मुगदरनुमा गावदुम पाँव थे, जोधपुरी साफ़ेकी कलँगी-सी दुम थी और गधेके-से कान थे। ज़ीनकी जगह पीठपर दरी बिछी हुई थी और रकाबकी जगह एक तरफ़ घण्टी-सी लटक रही थी।' अब लीजिए साहब, न रकाब, न ज़ीन, न लगाम और काला घोड़ा सवारीके लिए हाज़िर है।"

मैंने अपना दिमाग़ी पैतरा बदलते हुए कहा, "और साहब, आपने ये सब याद भी ख़ूब कर रक्खा है, नहीं तो किसे ख़याल रहता है काले घोड़ेकी घण्टीका ?"

वे प्रोत्साहित हो गये और सरपट बोलने लगे, "यही नहीं, मैंने तो जामिनीरायकी और भी तस्वीरें देख लीं। कहीं चन्द लड़कियोंके चेहरे बने थे और कह दिया गया कि पाँच बहनें हैं; सबके एकसे चेहरे, न जाने किस कमबख़्तकी लड़कियाँ थीं। अब अपने मुँहसे क्या कहा जाय ! हमने भी तीन औरतोंकी आदमक़द तस्वीरें बनाई थीं। एक परदेकी बात कर रहा हूँ। पर्दा सामने आते ही एक तिहाई हाज़रीन बेहोश हो जाते थे, एक तिहाई सर धुनते और आहें भरते थे और एक तिहाई ग़ज़लें पढ़ने लगते

थे। यहाँ इन बहनोंका यह हाल था कि देख लीजिए तो सारी दुनियामें बस बहनेंकी बहनें नज़र आने लगेंगी। भई, मैं तो बाज़ आया ऐसे जामिनीरायसे।"

मैंने विरोध न करते हुए, पर जामिनीरायको बचाते हुए कहा, "और तस्वीरोंके क्या हाल थे? कलकत्तेसे तो और भी चित्र आये होंगे।"

"अब औरकी न पूछिए", प्रोफ़ेसर पन्नालाल नाक सिकोड़कर बोले, "वक़्तकी बात है। चलतीका नाम गाड़ी है। जब मढ़ते बनती है तो बजती भी ठनाके-से है।" कुछ देर शान्त रहकर वे फिर अकस्मात् कहने लगे, "कोई अवनीन्द्रनाथ ठाकुर थे। उनके साथ नन्दलाल, शारदा वकील, हालदार, मजूमदार न जाने कितने लोगोंकी तस्वीरें एक तरफ़ दीवाल घेरे थीं। वहाँ भी वही हालत! हमने तस्वीरें देखीं और नज़र नीची कर ली।"

मैंने पूछा, "उनमें भी कोई ख़राबी थी?"

कहने लगे, "जब सारा जहान उन तस्वीरोंको लासानी मानता है तो मैं कैसे ख़राब बता सकता हूँ? पर बालिश्त भरके चेहरेमें डेढ़ बालिश्त लम्बी आखें और हाथ भरके हाथमें डेढ़ हाथ लम्बी उँगलियाँ, माफ़ कीजिएगा भाई जान, ऐसे इन्सान इधरके इलाक़ेमें तो होते नहीं हैं।" आधे मिनट तक इन्होंने सारगर्भित शान्ति-सी दिखाई और फिर बगटुट छूट चले, "और तस्वीरोंके नाममें वह फ़रेब है कि किसे क्या कहें? नन्दलाल साहबकी एक तस्वीर है "वसन्त।" अब पूछिए मुझसे कि वसन्त किसे कहते हैं। वसन्त उसे कहते हैं जिसमें पेड़-पौधे फूलोंसे लद जायँ, हवा

अठखेलियाँ करती हुई बहे, कोयल बोले, भौंरे गुनगुनायें और बिरहिनें बाग़ोंमें घूम-घूमकर कामदेवको कोसें। तो, यह तो हुआ बसन्त, और पूछिए नन्दलाल साहबसे कि उन्हें भी कुछ ख़बर है बसन्तकी। इसी तस्वीरमें कुल तीन अदद पेड़ नज़र आते हैं। वीराना-सा है। पेड़ोंपर पत्तियाँ लगी हैं या फूल, कहना आसान नहीं और दो आदमी आगे-आगे भागसे रहे हैं और दो आदमी हाथमें चिकारा लिये पीछा कर रहे हैं। इन पीछा करनेवालोंमें ग़ालिबन् एक औरत भी है और वह बच्चा लिये है। यानी बसन्त-में बच्चा भी शामिल हो गया। अब लीजिए साहब हो गया वसन्त। इसीमें हवाकी अठखेलियाँ भी हैं, इसीमें कोयल भी है और बिरहनका कोई ज़िक्र नहीं!"

प्रोफ़ेसर पन्नालाल हँसने लगे। उनकी ऐसी निश्छल और द्वेषहीन हँसी सुनकर मैंने पूछा, "तो कलकत्ता स्कूल आपको पसन्द नहीं आया। बम्बईवालोंकी भी तस्वीरें आपने देखी होंगी।"

सुनते ही वे तड़प उठे। बोले, "उनका नाम न लीजिए साहब, मैं भी बम्बईमें रहा हूँ और जहाँ अपनी तस्वीरोंका वह दौर रहा वहींके लोग आज यह दिन दिखायें। बस कुछ नहीं कह सकता। कहीं तीन काली-कलूटी औरतें बैठी हैं। कोई चावड़ा साहब हैं, उनकी तस्वीर है। एक औरत ओखलीमें कुछ कूट-सी रही है। बस जनाब हो गई तस्वीर। चन्द मछलियाँ पड़ी हैं और एक पानीका बर्तन रक्खा है, सब कुछ धुँधला है। भाई साहब, यह भी एक तस्वीर है। अब यही सब रह गया है।"

मैंने कहा, "एक 'प्रोग्रेसिव ग्रूप' भी है।"

वे कुछ देर भौंहोंपर बल डाले सोचते रहे। फिर बोले, "कह तो दिया जनाब कि कहीं सिर्फ़ तिकोने बनाइए, कहीं चौकोर नक़्शे खींचिए, कहीं खर-पतवार उगाकर बीचमें एक आँख बना दीजिए, कहीं सर बनाइए तो पैर न बनाइए या पैर बनाइए तो सिर्फ़ पैर ही पैर बनाइए, इसी सबसे आपका मतलब है न? तो इसी भोलेपनकी बदौलत आपके आर्टिस्ट विलायतका मुक़ाबला करने चले हैं?"

विलायतकी बात सुनकर मैंने कहा, "तो आप कहते क्या हैं? अमृत शेरगिलने तो फ्रांसमें अपनी तस्वीरोंसे वहाँवालोंका मुक़ाबला किया ही था।"

प्रोफ़ेसर पन्नालालने कहा, "मगर कहाँ साहब? मैंने उनकी भी तस्वीरें देखी हैं। जामिनीरायके मुक़ाबलेमें उनकी तीन बहनें देखिए तो मालूम होता है कि ये बहनें सचमुच ही कुछ हैं। पर बारीकीसे देखिए तो पता चलना मुश्किल है कि कौन बड़ी है और कौन छोटी, कौन शादीशुदा है, कौन शादी करेगी। अब बताइए यह सब कोई कहनेके लिए विलायतसे तो आवेगा नहीं।" वे कहते गये, तस्वीर तो बोलती हुई होनी चाहिए। पर आजकल तो लफ्फ़ाज़ीपर तस्वीरें चलती हैं। मैंने देखा कि एक कमरेमें मेज़पर चायके चन्द प्याले टेढ़े-मेढ़े पड़े हैं। अब जनाब, एक साहब मुझे पढ़ाने लगे कि इसमें इन्सान नहीं दिखाया गया पर लगता है कि कमरेसे अभी-अभी चाय पीकर लोग बाहर गये हैं। मैंने कहा, भाईजान, इसका क्या सबूत? मुझे तो लगता है कि नौकर

बेसलीक़ेसे प्याले रख गया है और लोग उन्हींमें चाय पीनेको आ रहे हैं। यह तो अपना-अपना ख़याल है।"

मैंने कहा, "तो सबूत होता भी तो क्या होता ?"

वे बोले, "क्यों, फ़र्शपर जाते हुए पैरोंके निशान क्यों नहीं दिये। भई, अक़्लकी ज़रूरत तो सभी जगह पड़ती है!"

इतनी देर बाद मुझे लगा कि मेरे धैर्यकी आख़िरी बूँद भी सूख रही है अतः मैंने कहा, "प्रोफ़ेसर साहब, असल बात यह है कि आजकलकी चित्रकलाके बारेमें आप कुछ नहीं जानते। इसकी सुन्दरता समझनेके लिए आँख ही नहीं, दिमाग़ भी चाहिए।"

पर वे शायद इसके लिए भी तैयार थे। इसलिए वे फिर मुसकरा दिये और बिना कहे ही कह ले गये कि मेरी पीढ़ीके लड़कोंसे वे इसी तमीज़की उम्मीद करते हैं। कहने लगे, "बस, बस, यही बात हम लोगोंने कभी नहीं कही। हम यहीं कच्चे पड़ते हैं। तुम लोगोंका तो यह हाल है कि गाना बहुत घुमाकर गाओगे। न पसन्द आया, तो कह दोगे कि गानेवाला पक्का गवैया है और सुननेवाला गावदी है। बादमें अगर तुम अंग्रेज़ी ट्यूनपर कोई सड़ियल तराना छेड़ बैठे और हमने नाक सिकोड़ी तो कह दोगे, पुराना जाहिल है, कुछ नहीं जानता। वही हाल आर्टिस्टोंका है। तस्वीर सरासर आँखके सामने है, देखता हूँ तो देखनेमें अच्छी नहीं लगती, न कोई देवी है, न देवता है, न आदमी है, न औरत है, न नेचरका करिश्मा है, न इन्सानकी हिकमत है। टेढ़ी-मेढ़ी बेढंगी बातें हैं। मैं देखकर कहता हूँ कि यह तस्वीर दो कौड़ीकी है और आप कह देते हैं कि मैं नासमझ

हूँ। यानी सरासर तस्वीर देख रहा हूँ और आप कहते हैं कि मैं देखता नहीं हूँ।"

प्रोफ़ेसर पन्नालाल शायद दूसरेकी गवाही मान जायँ इस आशासे मैंने कहा, "और इन तस्वीरोंपर जो इतना इनाम दिया जाता है···?"

वे बोले, "इनाम क्या ? इनाम तो सरकार पक्के गानेपर भी देती है और फ़िल्मी गानोंपर भी। पुराने ढंगकी किताबोंपर देती है और नये क़िस्मकी पापुलर किताबोंपर भी देती है। हर आर्टकी यही हालत है। सिर्फ़ तस्वीरोंके मामलेमें घपला है। मैं तो यह कहने जा रहा हूँ कि जहाँ आप पाँच टेढ़ी-मेढ़ी आँखोंके गोल दायरोंपर इनाम देते हैं, वहीं मेरे राम-पंचायतनपर भी रहम खा लें। वे गोल दायरे तो आपके गोल कमरेमें ही हैं पर राम-पंचायतन तो जनता के घर-घरमें है। ज़रा यह भी तो देखिए।"

वे कुछ देर उत्तेजितसे बैठे रहे। फिर सहसा हँसकर जैसे कोई भूला हुआ फ़ारमूला-सा याद करते हुए बोले, "भाई जान, अब तो जनता-राज है और हम जनताके आर्टिस्ट हैं। आप हमारी समझपर हँसकर ख़ुद कौन-सी समझ दिखा रहे हैं ?"

इस बार जिस अन्दाज़से उन्होंने झुककर छातीपर हाथ रखा और अकड़कर मूँछोंसे हँसीकी फुलझड़ी बिखेरी, उससे मुझे इत-मीनान हो गया कि प्रोफ़ेसर पन्नालालकी आर्टिस्टी निशात थियेटर कम्पनीके पर्दोंके ऊपर तक ही नहीं, कभी-कभी पर्देके आगे स्टेज-पर भी खिसक आती रही होगी। मैंने अपनी नासमझी मान ली और उनसे माफ़ी माँगी। उन्होंने मुझे माफ़ कर दिया और मेरी वंश-परम्परागत विनम्रताकी प्रशंसा की।

प्रभात-समीरण उर्फ़ सुबहकी हवाएँ

(एक ऐसी प्रेम-कथा, जो कई फ़िल्मोंके आधारपर बनी है और जिसके आधारपर कई फ़िल्म बने हैं। उसमें दो फ़िल्मोंका परिचय इस प्रकार दिया जा सकता है :)

"एक महान् देशके महान् अतीतकी महान् सांस्कृतिक विभूतियोंको चित्रित करता हुआ एक महान् चित्र।"

अथवा

"दो दिलोंकी कहानी, जिन्हें बेदर्द दुनियाँ मिलने नहीं देती पर मुहब्बत भी वह शै है जो आग पानीमें लगाती है—इसके बाद रुपहले पर्देपर देखिए।"

अहा ! इस लोकमें प्रणयकी भी कैसी महिमा है ! न तात, न माता, न भ्राता, न भ्रातृज—कोई सत्य नहीं है। प्रणय-तत्त्व ही चरम सत्य है। इसीके आधारपर मानव रोदसी-रमण करता है, आकाश-आस्फालन करता है, महीधरोंका मर्दन करता है। छिन्छु-रितवसन बनता है। भवन-भस्मीकरकी उपाधि पाता है। प्रणय परम पवित्र है।

(दुनियामें मुहब्बत भी क्या चीज़ है ? न बाप, न माँ, न भाई, न भतीजा—कोई सच्चा नहीं है। सच्ची अगर कुछ है, तो मुहब्बत है। इसीके सहारे इन्सान हवासे लड़ता है, आसमानसे भिड़ता है, पहाड़ोंसे टकराता है। अपना गरेबाँ फाड़ सकता है, अपना घर उजाड़ सकता है। मुहब्बत बहुत ही नेकपाक है।)

अतः इसमें विस्मय ही क्या कि कुमार उदयनका प्रेम कुमारी पुष्पितासे हो गया। उदयन एक महासामन्तके कुमार थे। वे गन्धर्वलोकसे प्रशिक्षित होकर विमान-द्वारा आकाशमार्गसे जम्बू-द्वीपस्थित भरतखण्डमें आये। पुनः भूमियान-द्वारा अपने पुरके निकट पहुँचे। अनुपलब्ध प्रवृत्तिके कारण वहाँ उनका गैहिक स्वर्णशकट नहीं पहुँच सका। अतः कुमारी पुष्पिता-द्वारा परि-चालित रथपर बैठ वे अपने प्रासाद पहुँचे। पुष्पिता महासामन्तके एक ऐसे सामन्तकी कन्या थीं जिन्हें कूट-प्रपंचके दोषोंपर निष्कासन मिला था। तथापि, समागतवयकी प्रेरणा : नयनाभिमुख होते ही उनमें रागोदय हुआ। दोनों कुछ काल व्रीडावनत रहे। फिर स्मितमुख होकर रथोद्भूत स्वर-लहरीके आश्रयपर साथ-साथ सांगीतककी अवतारणा करने लगे।

(इसीलिए इसमें अचम्भा ही क्या कि उठल्लू बाबू फूलासे मुहब्बत कर बैठे। उठल्लू बाबू बड़े ज़मीन्दारके लड़के थे। विलायतमें तालीम पाकर, हवाई जहाज़से एशियाके अन्दर वे हिन्दुस्तान आये फिर रेलपर चढ़कर अपने गाँवके स्टेशन पहुँचे। ख़बर मिलनेमें गड़बड़ी हो जानेके कारण उन्हें घरकी सवारी न मिल सकी। तब वे एक ऐसी बैलगाड़ीपर बैठकर घर गये जिसे फूला हाँक रही थी। वह ज़मीन्दारके एक ऐसे पुराने नौकरकी लड़की थी जिसे फ़रेबके जुर्ममें निकाल दिया गया था। पर उमरका तक़ाज़ा; निगाह मिलते ही उनमें मुहब्बत हो गई। दोनों कुछ देर शर्माये, फिर मुसकराये, फिर बैलोंके खुरोंकी आवाज़में दोनों एक साथ एक गाना छेड़ बैठे।)

तदनन्तर उनके पारस्परिक प्रणयके प्रकाशसे समस्त जगत् चमत्कृत हो गया। उस जनपदके निकट बहनेवाली धाराओंपर दारुनिष्क्रामक बने थे। वहाँ दोनोंने वर्षाकी कादम्बिनीको देख "सन्तप्तानां त्वमसि शरणम्", का मधुर गान किया। सरिताकूल-पर लतान्तरालमें विद्यमान एक तरणी थी। उसपर दोनोंने नौका-विहार किया। परस्पर वे धारामें प्रविष्ट हुए। परस्पर ही जलप्लावित हुए। एक भग्न अट्टालिका थी। उसकी प्राचीरछायामें वे बैठे। उसके धूसर अलिन्दमें अश्रुपात-रत हुए। उसके एक निभृत प्रकोष्ठमें जाकर हँसे। उनका प्रणय जगद्विख्यात हुआ।

(इसके बाद दोनोंकी मुहब्बतने वह रंग पकड़ा कि ज़माना दंग रह गया। गाँवके पास नालोंपर लकड़ीके पुल बने थे। वहाँ खड़े-खड़े उन्होंने बरसातके बादलोंको देखा और "ओ बादल, तुही दिलजलोंका सहारा" गाया। नदीके किनारे झाड़ियोंमें एक नाव बँधी रहती थी, उसपर चढ़कर दोनों नदीमें घूमे। वे साथ-साथ पानीमें कूदे और साथ-साथ भीगे। एक टूटी-फूटी गढ़ी थी, वे उसकी शहतीरकी छाँवमें जाकर बैठे। उसके मटियाले बरामदोंमें जाकर रोये। उसके एक कोनेमें हँसे। उनकी मुहब्बत जग-उजागर हो गयी।)

अतः उनके माता-पिताको यह प्रणय-दशा पूर्णतः विदित हो गयी। वे घोर असन्तुष्ट हुए। उभय-पक्षमें अन्तःपुरीय कलहका सूत्रपात हुआ। पुष्पिताका एक पुरुषसे पाणिग्रहण संयोजित था। उसका नाम क्षेत्रपति संवर्धन था। यहाँ तक कि इस प्रणय-कथाका ज्ञान उसे भी हो गया।

(उनकी यह हालत उनके माँ-बापसे छिपी न रही। वे बहुत नाराज़ हुए। दोनों ओर घरोंमें अन्दरूनी झगड़े-फ़साद फैलने लगे। फूलाकी मँगनी एक किसानसे हो गयी थी। उसका नाम बाढ़ू था। यहाँ तक कि उसे भी यह क़िस्सा मालूम हो गया।)

एक दिन कुमारी पुष्पिताका मार्ग-रोध करके क्षेत्रपति संवर्धनने कुछ अभद्र शब्द कहे तथा कुमार उदयनकी हत्याका भय दिखाया। वे आकृति और प्रकृति, दोनोंसे विकर्षक थे, उनका शिरोभाग खल्वाट था, शरीर पृथुल था। वे ईषत्तुन्दिल थे। उनके परिचरोंमें जनपदके क्रूरतम दस्युओं एवं लम्पटोंका प्राचुर्य था। क्षेत्रपति संवर्धनने उन्हें कुमार उदयनके वधार्थ प्रेरित किया।

(एक दिन बाढ़ू किसानने फूलाको रास्तेमें रोक उससे कुछ बदतमीज़ीकी बातें कीं और उठल्लूबाबूका ख़ून करा देनेकी धमकी दी। बाढ़ूकी शकल और आदत, दोनोंसे नफ़रत होती थी। उसका सर गंजा था, जिस्म थुलथुल था। पेट कुछ निकला था। उसके हमराहियोंमें वहाँके सभी ख़ूँख़्वार डकैत व गुण्डे भरे थे। उन्हींको बाढ़ूने उठल्लू बाबूको मारनेके लिए भेजा।)

एक दिन दस्युओंने विजन-वनमें कुमारके रथकी वल्गा पकड़ ली और उनपर आक्रमण किया। परन्तु साधु, कुमार, साधु! किसीको उन्होंने पाद-प्रहारसे पीड़ित किया, किसीको कर-प्रहारसे कर्तित किया, किसीको मुष्टि-प्रहारसे मर्दित किया। इस प्रकार समस्त दस्युओंका दमन करके, स्वयं म्रियमाण अवस्थामें उन्होंने प्रासादके अन्तःपुरमें प्रवेश किया। उनकी रक्त-रंजित सज्जा देख

कञ्चुकी काँपे, विदूषक विषण्ण हुए, परिचारिकाएँ पर्याकुल हुईं, उपचारक अवसन्न हुए।

(नतीजा यह हुआ कि एक दिन सुनसान बियाबानमें उठल्लू बाबूकी गाड़ी रोककर डकैतोंने उनपर हमला किया, पर शाबाश, मेरे पट्ठे! किसीको उसने पैरसे पटका, किसीको हाथसे काटा, किसीको मुक्केसे मारा। यों डकैतोंको दबाकर, वे अपने मकानपर आये और अन्दर घुसे। वे ख़ुद चोट खा चुके थे और मरनेकी हालतमें थे। यह देख कारपरदाज़ काँपे, भँड़ैत भड़भड़ाये, नौकरानियाँ घबराईं, डाक्टरोंके दिल बैठ गये।)

महार्हरत्नजटित पर्यंकपर तिरस्करिणी द्वारा अदृश्यमान कुमार श्वेतपटाच्छादित सज्जामें म्रियमाण पड़े थे। कुमारी पुष्पिता लोकाचारका निराकरण करके उनके दर्शनार्थ आईं। देखते ही उन्होंने चीत्कार किया, और चीत्कार करती हुई, बाणविद्ध मृगी-सी पलायित हुईं वे शिवालयमें पहुँचीं और वाष्पावरुद्ध कण्ठसे उच्चस्वरमें गायन करने लगीं, "चन्द्रशेखर, चन्द्रशेखर, पाहि माम्।"

(उठल्लूबाबू क़ीमती पलँगपर लेटे थे। चारों ओर पड़े पर्दोंने उन्हें ढँक दिया था। जिस्मपर सफ़ेद पट्टियाँ बँधी थीं। फूला दुनियाका लिहाज़ छोड़ उन्हें देखने पहुँची। देखते ही उसके मुँहसे चीख़ निकली। चीख़ती हुई, वह गोली खाई हिरनी जैसी वहाँसे भागी और शिवालेमें आकर रुँधे गलेसे चिल्ला-चिल्लाकर गाने लगी, "मेरी नैया प्रभूजी बचाना।")

गायनके उपरत होते ही, प्रवर्धमान दीपशिखाके इंगितसे कुमारी पुष्पिताको उदयनके चेतना-लाभका ज्ञान हुआ। अब वे

मत्त-मयूरी-सी लास-लालित पद-क्षेपण करती, संगीत-निरत भावमें प्रत्यावर्तित हुई; किन्तु हन्त दैव ! संवर्धनने पुनः मार्ग-रोध करके उन्हें अपने सैन्धव अश्वपर बैठा लिया एवं निमेषमात्रमें सघन काननके अन्धकारमें विलीन हो गया ।

(गाना ख़त्म होते ही शिवालेके चिराग़की लौ ऊँची उठी। बस फिर क्या था ! फूलाने समझ लिया कि उठल्लूबाबूको होश आ गया है । अब वह मस्त मोरनी-सी फुदकती, नाचती, गाती वापस लौटी, पर हाय री क़िस्मत ! बाढ़ू रास्ता रोके था। उसने फूलाको अपने सिन्धी घोड़ेपर बिठाया और पलक मारते जंगलके अँधेरेमें गायब हो गया ।)

दिग्दिगन्तमें इसकी प्रचारणा हुई । कुमार उदयन चेतना पाकर प्रहृष्ट मुद्रामें लेटे थे । सूचना पाते ही वे खड्गपाणि होकर अपने यावनीय अश्वपर आरूढ़ हुए और उसी ओर गमनोद्यत हुए जिधर संवर्धन गया था। इस दशामें पुत्रको जाता देख, पूर्व अमर्षका त्यागकर, उदयनके पिता महासामन्त निष्कर्मण्य भी शस्त्रसज्जित हो उन्हींकी ओर प्रधावित हुए ।

(चारों ओर इसकी ख़बर फैली । होशमें आकर उठल्लूबाबू ख़ुशीसे लेटे थे, ख़बर पाते ही हाथमें तलवार लेकर वे अपने अरबी घोड़ेपर सवार हुए और तेज़ीसे उसी ओर बढ़े जिधर बाढ़ू गया था । यों बरख़ुरदारको जाता देख, उठल्लूबाबूके बाप ज़मीन्दार निठल्लूबाबूने ग़ुस्सेको थूक दिया । वे भी हथियारसे लैस होकर उन्हींके पीछे रवाना हुए ।)

चार योजनतक वे अश्वोंको अपरिकल्प्यत्वरासे धावित करते

रहे। तदनन्तर पर्वत-श्रेणीपर एक विराट गह्वरके आ जानेसे मार्गमें व्यतिकर समुपस्थित हो गया। क्षेत्रपति संवर्धनको रुकना पड़ा। द्रुतगतिसे पृथ्वीपर उतरकर कुमार संवर्धनसे वह खड्गयुद्ध करने लगा। कुमारी पुष्पिता संत्रस्त नेत्रोंसे इस घटनाको देखती रहीं।

(सोलह कोस तक तीनों होश गुम कर देनेवाली रफ़्तारसे घोड़े भगाते रहे। उसके बाद पहाड़ीपर एक भारी खुड्ड आ गया और बाढ़ूका रास्ता रुक गया। वह घोड़ेसे कूदकर ज़मीनपर आ गया और उठल्लूबाबूके साथ तलवार चलाने लगा। फूला सहमी निगाहोंसे यह सब देखती रही।)

प्रथमतः कुमार उदयन संवर्धनको प्रताडित करते-करते गह्वर तक ले गये, पुनः संवर्धनने उदयनको वही स्थान दिखाया। गह्वरपर एक रज्जु प्रलम्बित थी। उससे निलम्बित होकर दोनोंने युद्ध किया। पुनः गह्वरकी कोटिपर आकर उन्होंने वैसा ही युद्ध किया। तत्पश्चात् उदयनने संवर्धनके शरीरपर आरोहण करके करवाल-कला दिखाई, पुनः संवर्धनने उदयनपर आरोहण करके अपनी कला दिखाई। कुमार उदयन क्रमशः संज्ञा-शून्य हो ही चले थे कि महासामन्त निष्कर्मण्यने पीछेसे आकर संवर्धनको रणाह्वान दिया। संवर्धनने बिना उत्तर दिये एक परिघास्त्र निष्कर्मण्यपर प्रक्षिप्त किया।

(पहले उठल्लूबाबूने बाढ़ूको मारते-ढकेलते खुड्डतक पहुँचाया, फिर बाढ़ूने उनको वहाँ तक ढकेला। एक रस्सी भी खुड्डपर टँगी थी, दोनों उससे लटककर तलवार चलाते रहे। फिर दोनों खुड्डके किनारे आकर लड़ते रहे। फिर उठल्लूबाबूने बाढ़ूपर तलवार

चलाई। फिर बाढ़ूने उठल्लूबाबूपर तलवार चलाई। उठल्लूबाबू बेहोश होने लगे कि पीछेसे ज़मीन्दार निठल्लूबाबूने आकर बाढ़ूको ललकारा। बाढ़ूने बिना कुछ कहे एक कटार फेंककर निठल्लूबाबूपर मारी।)

किन्तु दैवी विधान, कि एक श्वेत जटाधारी मानवने महासामन्तके सम्मुख आकर वह परिघास्त्र अपने वक्षपर झेला और वहीं संज्ञाशून्य होकर भूलुण्ठित हो गया। महासामन्त विलाप करते हुए बोले, "अहह, सामन्त विचक्षण, तुम्हारा यह अन्त!" विचक्षण बोले, "स्वामिन्, स्वामिन्, स्वामीके प्राण-रक्षणमें मेरा प्राण-भक्षण हो यह परम सौभाग्य है।" विचक्षणका प्राणान्त हो गया। महासामन्त और भी रोने लगे; कुमारी पुष्पिता भी कुररी-सदृश आक्रोश करने लगीं। सामन्त विचक्षण ही कुमारी पुष्पिताके पिता थे।

(पर क़िस्मतकी क्या कहिए, एक सफ़ेद बालोंवाले इन्सानने ज़मींदार निठल्लूके आगे आकर उस कटारको अपनी छातीपर रोक लिया और बेहोश होकर वहीं ज़मीनपर लोट गया। निठल्लूबाबू रोते हुए बोले, "हाय, बुझावन भाई, तुम यों गये!" बुझावन बोले, "मालिक, मालिककी जान बचानेमें अपनी जान जाय, इससे बढ़कर और क्या हो सकता है।" बुझावन मर गया। निठल्लूबाबू और भी रोने लगे। फूला भी चीलकी तरह चीख़कर रोने लगी। बुझावन ही फूलाके बाप थे।)

इस स्थितिमें संवर्धनने एक और परिघास्त्र प्रक्षिप्त किया जिसके आघातसे महासामन्त निष्कर्मण्य प्रणवोच्चार करते

हुए परमगतिको प्राप्त हुए। संवर्धनकी इस अनवधानतासे लाभ उठाकर कुमार उदयनने भी खड्गका एक ऐसा प्रहार किया कि संवर्धनका एक घोर चीत्कारके साथ प्राणान्त हो गया और वह गह्वरकी गहनतामें विलीन हो गया।

(इस दुःखकी घड़ीमें बाढ़ूने एक और कटार फेंकी जो निठल्लू बाबूकी छातीमें जा लगी और जिससे उनके मुखसे निकला, "राम, हे राम", और वे वहीं ढेर हो गये। बाढ़ूका ध्यान अपनी ओर न होनेसे मौक़ा पाकर उठल्लूबाबूने उसपर तलवारका वह वार किया कि वह भी वहीं चीख़ मारकर मर गया और खुड्डकी गहराइयोंमें गुम हो गया।)

अब सर्वत्र आनन्द व्याप्त हो गया। पाटलराग रवि अम्बरतल-से अवलम्बित हो रहा था। तरुशिखरोंपर रक्तांगराग छाया था। कमल मुकुलित था तो कोककुल प्रफुल्लित होनेवाला था। खगकुल कुलकुलायमान था। ताराकुल तमतमायमान था। ऐसे कालमें दो प्रेमी पितृहीन होकर, शत्रुहीन होकर, अर्थात् निष्कण्टक अवस्थामें अश्वोंपर चढ़े वही गान गाते हुए लौट रहे थे जो उन्होंने कुछ काल पूर्व अपनी रथ-यात्रामें गाया था। ओम् शान्तिः।

(अब चारों ओर बहार छा गयी। लाल-लाल सूरज आस-मानमें लटक आया। पेड़ोंकी फुनगियोंपर रंगीनियाँ बिखर गयीं। कमल मुरझाने लगा तो कोकाबेली फूलने लगी। चिड़ियाँ चहकीं, तारे चमके और अपने बापोंको गँवाकर, अपने दुश्मनोंको मिटा-कर, यानी सब मुसीबतें सुलझाकर, मस्तीके साथ, घोड़ोंपर चढ़े

हुए, दो इश्क़परस्त वही गाना गाते हुए वापस लौटे जो कुछ दिन हुए उन्होंने बैलगाड़ीपर बैठकर गाया था। दि एण्ड।)

टिप्पणी—आजके चलनके अनुसार इस कहानीके फ़िल्मोंका शीर्षक "प्रभात समीरण" उर्फ़ "सुबहकी हवाएँ" इसीलिए रक्खा गया है कि इसमें सुबहकी हवाओंका कोई ज़िक्र नहीं है।

साक्षात् पशु

शेरका शिकार

शिकारका शौक़ मुझे बचपनसे था। पर यह मुझे मालूम न था। यह बादमें विल्सनके बतानेपर जान पाया। तब मैं नैनीताल-में था वहीं एक दिन अकस्मात् विल्सनसे मुलाक़ात हो गई। वह जंगल-विभागका एक सम्मानित अधिकारी था। फिर तो हम दोनों-की घनी मित्रता हो गई, क्योंकि मैं भी जंगल-विभागका एक सम्मानित अधिकारी था। एक दिन मुझे पता लगा कि विल्सनको शिकारका शौक़ है। उस दिन उसे भी पता लगा कि मुझे भी शिकारका शौक़ है। यह सब बड़ी आसानीसे हो गया।

विल्सनको मैं प्रायः साफ़-सुथरे कपड़े व क़ीमती सूट पहने देखता था। वह भड़कीली अमरीकन टाइयाँ लगाता था, जिनमें प्राकृतिक दृश्योंसे लेकर फ़िल्मी तारिकाओं तककी तस्वीरें बनी रहती थीं। एक दिन मैंने देखा कि वह एक गन्दा ख़ाकी कोट पहने है। एक पुरानी ब्रीचेज़को निर्दयतासे चमड़ेकी पेटीके सहारे पेटपर बाँधे हुए है। मोटे और चौड़े जूते पैरोंमें हैं। चेहरेपर चार-पाँच दिनकी बढ़ी दाढ़ी है। सरपर एक पुरानी हैट है जिसे फ़ीतेके सहारे ठुड्डीपर बाँध लिया गया है। टाँगें फैलाकर चल रहा है। आँखें लाल हैं। मुँहसे सस्ती शराबकी बदबू आ रही है। कन्धेपर राइफ़ल लाठीकी तरह रक्खे हुए है।

उसे इस रूपमें देखकर मैं उत्साहसे उछल पड़ा। बोला, "अरे, तुम तो पुराने शिकारी निकले। कहाँसे आ रहे हो?"

उसने कहा—"शिकारी ! तुम यह भी नहीं जानते ? मैंने अबतक पचासों टाइगर बैग किये होंगे ? अभी-अभी तो मैं जंगलसे आ रहा हूँ। और फिर जंगलको जा रहा हूँ। साथ क्यों नहीं चलते ?"

उसी दिन शामको लगभग चार बजे, हम अपनी-अपनी राइफ़लें लेकर जंगलमें पहुँच गये। वह मेरा जाना-पहचाना जंगल था। हम लोग शेर मारनेके लिए वहाँ घूम रहे थे। उस जंगलमें चूँकि शेर न था इसलिए वहाँ घूमनेमें विशेष सुविधा थी।

इतनेमें एक झाड़ी बड़े ज़ोरसे हिली और तेज़ीसे छलांग लगाता हुआ एक भयानक जानवर उससे बाहर निकला। घबराहटमें विल्सनने राइफ़लका कुन्दा उसकी ओर तान दिया; पर उसने एक और छलांग लगाई और दूसरी ओर जंगलमें जाकर अदृश्य हो गया।

मुझे राइफ़लके कुन्देकी ओर देखते हुए देखकर उसने फिर कहा, "कभी-कभी नलीके बजाय कुन्दा दिखानेसे शेरपर इसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है। वह कुन्देको एक बहुत मोटी नली मानकर घबरा जाता है। इसीलिए मैंने उसे कुन्दा दिखाया था।"

मैंने उसकी बात नहीं काटी, तो उसने स्वयं रुककर कुछ देर बाद कहा, "हो न हो, था वह शेरका बच्चा ही।"

तब मैंने विश्वासके साथ कहा, "नहीं विल्सन, यह शेरका बच्चा नहीं है। यह रैबिट है। मैंने लगभग पचास रैबिट बैग किये होंगे। पहला रैबिट मैंने विन्ध्या रेन्जेज़में मारा था। तब मैं पन्द्रह सालका था।"

विल्सनने कुछ याद-सा करते हुए कहा, "रैबिट ? जिसे चौगड़ा या ख़रगोश कहते हैं ? यह जानवर तो पूरे उत्तरी भारतमें पाया जाता है।"

मैंने बताया, "जैसे भालूकी कई क़िस्में होती हैं; काला भालू, सफ़ेद भालू, वैसे ही रैबिट भी काला होता है, सफ़ेद होता है, यहाँ तक कि भूरा भी होता है।"

सहसा उसने मेरे कन्धेपर हाथ मारकर कहा, "तो यह कहो पार्टनर, तुम तो पुराने शिकारी हो, पन्द्रह सालकी उमरसे शिकार कर रहे हो।"

उस दिन मैंने अपने अतीतपर विचार किया तो ज्ञात हुआ कि लोग जैसे जन्मसे मूर्ख होते हैं, जन्मसे कवि होते हैं, वैसे ही मैं जन्मसे शिकारी हूँ।

दूसरे दिन हम लोग दूसरे जंगलमें शिकार खेलने गये क्योंकि पहले दिन जिस जंगलमें शेर नहीं मिल पाया वहाँ दूसरे दिन भी उसके न होनेका निश्चय न था।

प्यारे पाठको, इस कहानीको समझानेके लिए पहले आपको इस जंगलका भूगोल समझा दूँ। इसके उत्तर और पश्चिम पठारनुमा पहाड़ियाँ हैं, जिनकी ऊँचाई समुद्र-तटसे सात सौ फ़ीट है। दक्षिणके बायें भागसे उत्तरके दाहिने भाग तक यानी पूर्वकी ओर लगभग सात सौ फ़ीट ऊँची दूसरी पहाड़ियाँ हैं और उत्तरके बायें भागसे दक्षिणकी ओर यानी पश्चिममें लगभग सात सौ फ़ीट ऊँची कुछ और पहाड़ियाँ हैं। बीचके भागमें भी पहाड़ियाँ हैं जो सातसौ फ़ीट ऊँची हैं और जो उत्तर, दक्षिण, पूरब, पच्छिमकी पहाड़ियोंकी

ओर बराबर ऊँचाईसे फैली हैं। इन पहाड़ियोंमें कोई घाटी नहीं है और सब मिलाकर इस स्थानको एक भयानक जंगलका रूप दे देती हैं। इसमें आम जामुनसे लेकर बाँस बबूल तकके पेड़ हैं और बीच-बीचमें झरबेरी, करौंदे और मकोयकी भयंकर किन्तु छोटी झाड़ियाँ हैं। इनकी ऊँचाई इतनी कम है कि शेर इनमें बैठ नहीं सकता, वह लेट ही सकता है। उसका पता लगानेके लिए शिकारीको हर झाड़ीके आगे लेटना पड़ता है। कभी-कभी शेर व शिकारी एक दूसरेको लेटे-लेटे देख लेते हैं पर स्थानकी तंगीके कारण एक दूसरे तक पहुँच नहीं पाते।

आप कह सकते हैं कि यह जंगल न था बल्कि आम और जामुनका मामूली-सा बाग़ था। पर बाग़ और जंगलमें बड़ा अंतर है। बाग़ वह है जो किसी योजनाके अन्तर्गत लगाया जाता है। चूँकि यहाँपर जितने पेड़ थे वे बिना किसी योजनाके उगे थे या उगाये गये थे इसलिए आप चाहे जो कुछ कहें मैं तो इसे जंगल ही समझता था, समझता हूँ और समझता रहूँगा।

आजके दिन हम दोनोंने रबरके तल्लेवाले जूते पहन लिये थे। चलनेमें बिना कोई आवाज़ किये हम दोनों आगे बढ़ते गये। हमने पूरा जंगल छान डाला पर शेरका पता नहीं लगा। बात यह हुई कि रबरके तल्ले होनेके कारण हमारे जूतोंसे आवाज़ नहीं हुई, इसीसे शेर झाड़ियोंमें सोते ही रह गये। हमें जंगलके दूसरे किनारेपर अपनी भूलका अनुभव हुआ। इसीलिए हमलोग उस दिन वापस लौट आये और दूसरे दिन चमड़ेके तल्लेवाले जूते

पहननेका निश्चय किया ताकि शेर उनकी आवाज़से जागकर सामने आ सकें।

तीसरे दिन एक स्थानीय शिकारीने बताया कि एक गाय मारी हुई पायी गई है। उसे शेरने मारा है और वह उसपर उसीदिन शामको बैठनेवाला है।

उस दिन जब हम चले तो हमारा दिल ज़ोर-ज़ोरसे धड़क रहा था क्योंकि हमारे मनमें उत्साह तरंगें ले रहा था। विल्सनका चेहरा पीला पड़ गया था क्योंकि उसने सारी रात मारे उत्सुकताके विना सोये ही बितायी थी। मुझे पसीना आ रहा था। जी नहीं, डरके मारे नहीं, बल्कि इसलिए कि आनन्दके कारण नसोंपर तनाव पड़नेसे रक्तचाप बढ़ गया था। हमारे हाथ काँप रहे थे क्योंकि हममें उल्लास था और हमारे पैर लड़खड़ा रहे थे, क्योंकि हम जल्दी चलनेकी कोशिशमें थे।

हम लोग आज दूसरे रास्तेसे गये ताकि देरसे पहुँचे। अर्थात् तबतक पहुँचे जब शेर 'किल'पर आ गया हो। यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि मैं शिकारियोंकी इस थ्योरीसे बिलकुल सहमत नहीं हूँ कि पहलेसे जाकर 'किल' पर शेरकी प्रतीक्षा की जाय। बात यह है कि शेर और शायर कभी भी टाइमके पाबन्द नहीं हो सकते। यदि आप पूर्व निश्चित समयके अनुसार 'किल'पर पहुँच भी गये और शेर न पहुँचा तो व्यर्थकी निराशा होगी। इसलिए यह आवश्यक है कि आप अपना समय नष्ट न करें और शेरको पहले 'किल'पर पहुँचने दें। मैं अपने अनुभवसे कहता हूँ···

ख़ैर, यह तो कहानीके बाहरकी बात है। उस दिन यही

हुआ कि हम दूसरे रास्तेसे 'क़िल' तक पहुँचनेके लिए चले। रास्तेका नक्शा मेरे हाथमें था जिसमें लाल निशानोंसे उन जगहों-को दिखाया गया था जहाँ शेरने गायें मारी थीं और नीले निशान-से आदमियोंके मारे जानेका स्थान दिखाया गया था। वैसे नक्शेमें लाल और नीली स्याहीके निशान लगानेका अवसर अबतक न आया था। नक्शा न लाल था, न नीला। बल्कि यह सफ़ेद था और लाल और नीले निशान चिह्न समझानेवाली टिप्पणी ही में दिखाई पड़ते थे।

इस नक्शेमें जंगलके बीचसे काली लकीर द्वारा सीमेंटकी सड़क और दोहरी काली लकीरमें रेलवे लाइन भी दिखायी गयी थी। सड़कके किनारे पार्कका चिह्न भी था। हालाँकि हमें इस नक्शेका ख़ास भरोसा न था क्योंकि पहले जब-जब हम इसके सहारे आगे चले तब-तब हम घूम-फिरकर शहर ही में आ गये थे। फिर भी चूँकि हम शिकारी थे इसलिए नक्शा हमारे पास था और हम उसके सहारे चल रहे थे।

चलते-चलते, जंगलमें पहुँचनेके पहले, हमको एक दलदल पार करना पड़ता था। उसपर काई जमी थी। वहाँ हमें पैरोंके चार छोटे-छोटे निशान दिखाई पड़े। यद्यपि स्थानीय शिकारी बताता रहा कि वे बकरीके पैरोंके निशान हैं पर विल्सनने ज़िदकी कि वे शेरके पैरोंके निशान हैं। उसने फ़ीता निकालकर उनकी लम्बाई नापी और शेरके बारेमें सब कुछ जान लिया। हिसाब लगाकर उसने बताया कि शेर नर है, मादा नहीं; उसकी उम्र पन्द्रह साल है, उसके अगले बायें पैरके घुटनेमें चोट है, दायाँ पैर

लँगड़ाता है। उसकी लम्बाई दस फ़ीट साढ़े ग्यारह इंच है, उसका रंग भूरा है, उसका रूप भयानक है, उसका गुण घातक है, आदि आदि···।

इतनेमें कुछ अबाबीलें चहकीं। विल्सनने बताया कि पाँच मिनट पहले शेर वहाँसे निकलकर गया है क्योंकि अबाबीलें शेरके जानेके पाँच मिनट बाद ही बोलती हैं।

हम और आगे बढ़े ही थे कि विल्सन अकस्मात् मुँहके बल ज़मीनपर लेट गया और कनखियोंसे पासकी झाड़ीकी ओर देखने लगा। मैंने समझ लिया कि झाड़ीमें कोई जानवर मुँहके बल लेटा हुआ है।

अबाबीलें अब भी मेरे सरपर मँडरा रही थीं। मैंने एक अबा-बीलको पकड़कर अपनी जेबमें रख लिया ताकि उसके बोलनेपर मैं समझ सकूँ कि शेर हमसे पाँच मिनट पहले निकल चुका है।

अब गायके मरनेकी जगह लगभग सौ गज़ रह गयी थी। मैं सावधानीसे आसपास देखता हुआ बढ़ रहा था कि एक झाड़ी बड़े ज़ोरसे हिली और जबतक मैं अपनी राइफ़ल सम्भालूँ-सम्भालूँ तबतक शेर मेरे सामने आकर खड़ा हो गया।

प्यारे पाठको, इस दशाका विचार करो। मेरे चारों ओर कोई सहायक न था और सामने शेर मुँह फाड़े खड़ा था। मैंने फिर भी हिम्मत न हारी। सेफ़्टीकैचको रिलीज़ करके मैंने राइफ़लकी नली शेरके आगे कर दी और उसका घोड़ा दबा दिया। पर घोड़ा दबा ही नहीं। शायद कारतूस मैगज़ीनमें फँस गया था।

शेर पहले चाहे डरा भी हो पर राइफ़लके बेकार होते ही

उसके चेहरेपर ख़ुशीकी लहर दौड़ गयी। उसने मुझपर हमला किया। राइफ़ल मेरे हाथसे छूटकर दूर जा गिरी।

शेरने मुझे एक पंजेसे गिराना चाहा, पर मैं गिरा नहीं। इसलिए हममें कुश्ती होने लगी। शेर शेर था। पर मैं भी मैं था। पर मैं कब तक मैं रह सकता था? सच तो यह है कि थोड़ी देरमें मैं थक गया। तब शेरने मुझे नीचे गिरा दिया। नीचे गिराकर उसने मुझे मार डाला। मार चुकनेपर वह मुझे खा गया।

यह बात अतिशयोक्तिमें कही गयी जान पड़ती है और अतिशयोक्ति है भी। सच बात तो यह है कि शेरने मुझे मारा नहीं, न खाया ही। बल्कि जैसे ही वह मुझे मारने चला, मैंने उसका पाँव पकड़ लिया और चीख़कर कहा, "बाघ मामा, मुझे न मारो।"

शेरने गरजकर कहा, "तू जब मेरा भांजा बन गया तो मैं सचमुच ही तुझे नहीं मार सकता। पर बोल, तू ज़िन्दा क्यों रहना चाहता है?"

मैंने कहा, "बाघ मामा, तुम्हारा यह फैला हुआ मुँह भला किस शिकारीको देखनेको मिलता है? सब शिकारी तुमसे मिलने-की डींग ही हाँकते हैं। पर मैंने तो सचमुच तुमसे कुश्ती लड़ी है। तुम्हारा फैला हुआ मुँह देखा है। तुम मुझे नहीं जानते। मैं साहित्यका सेवक हूँ। साहित्य-सेवाकी बात मरते दम तक न भूलूँगा। अपने यहाँ शिकारकी कहानियोंकी कमी है। मैं ज़िन्दा

रहकर इस घटनापर एक कहानी लिखना चाहता हूँ। उसके बाद, हे बाघ मामा, मैं यहाँ आकर फिर ऐसे ही लेट जाऊँगा।"

यह सुनकर शेरने कहा, "मैं शेर हूँ तो तू दिलेर है। जा, जाकर कहानियाँ लिख।"

जब पाँच मिनट बाद अबाबील मेरी जेबमें चहकी तब मैंने आँखें खोलीं। मैं ज़मीनपर विल्सनसे चार गज़ आगे पड़ा हुआ था। बहुत कल्पना करनेपर ही शेरसे भिड़न्तकी बात याद आ सकी।

प्यारे पाठको, कहा जा सकता है कि इसमें भी अतिशयोक्ति है, पर अन्तमें कुछ भी अतिशयोक्ति न हो तो क्या शिकारकी कहानी किसीको अच्छी लगेगी ?

आधा तीतर

एक दिन विल्सनने मेरे घर आकर कहा, "झीलमें चिड़ियाँ गिर रही हैं। उनका शिकार करने चल रहा हूँ। तुम भी चलो। जो मज़ा शेरके शिकारमें आया था, उससे ज़्यादा चिड़ियोंके शिकार-में मिलेगा।"

मैंने बन्दूक़ कन्धेपर डाली, कारतूसें जेबमें डालीं, सर हैटमें डाला या यों कहिए, हैट सरपर डाली, जूते पाँवमें डाले और बिना किसी बहसके विल्सनके साथ हो लिया।

विल्सनने मुझे थोड़ी देर विश्वासरहित निगाहोंसे देखा। फिर कहा, "बन्दूक़? तुम बन्दूक़ क्यों लिये चल रहे हो? मैं तो तुम्हें साथके ही लिए ले चल रहा था। क्या तुम भी चिड़ियाँ मारोगे?"

मैंने कहा, "हाँ विल्सन, मैं भी चिड़ियाँ मारता हूँ।"

उसने मुझपर फिर सन्देहभरी दृष्टि डालकर पूछा, "पर तुम उन्हें खाते तो नहीं? तुम तो वेजिटेरियन हो।"

मैंने ऊँची समझ दिखानेवाली एक मुसकराहट उसपर फेंकी और कहा, "विल्सन, उससे क्या होता है। मारना एक बात है, खाना दूसरी। जैसे तमाचा मारता कोई और है, खानेवाला कोई और होता है।"

विल्सन हो-हो करके हँस पड़ा। तभी सामने ताड़के पेड़पर

किसी बड़ी चिड़ियाने पंख फटकारे। उसे देख विल्सनने कहा, "तो ये पहाड़ोंसे नीचे आ गये ?"

मैंने प्रश्नभरी निगाह विल्सनपर डाली। वह समझाने लगा, "कुछ चिड़ियाँ ऐसी होती हैं जो रहती तो पहाड़ोंपर हैं पर जाड़ा शुरू होनेके पहले मैदानोंमें आ जाती हैं। यह चिड़िया उन्हींमें-से है।"

उसकी बात आगे बढ़ाते हुए मैंने कहा, "और इसका नाम गिद्ध है। यह एक मांसाहारी—नानवेजेटेरिन चिड़िया है। इसकी ख़ूबी यह है कि यह जानवर खा तो सकती है पर मार नहीं सकती, कुछ-कुछ तुम्हारी तरह···।"

विल्सनने आश्चर्यसे मेरी ओर देखा और कहने लगा, "तो पार्टनर, ये कहो। चिड़ियोंकी सभी बातें तुम जानते हो। चलो, आज तुम्हारा भी करिश्मा देख लिया जाय।"

मैं विल्सनकी बातसे प्रोत्साहित हो गया। यहाँ मैं आपको बता दूँ कि कोई ज़रा-सा इशारा भी कर दे कि मैं शिकारी हूँ और मैं तत्काल प्रोत्साहित हो जाता हूँ। मैंने उसी वक्त बंदूक़में एक कारतूस डाला और ताड़की ओर बिना कोई ख़ास निशाना लगाये फ़ायर कर दिया। दो-एक चिड़ियाँ उड़ गईं। मैंने बन्दूक़ खोली, कारतूस बाहर निकाला, नलीके अन्दर फूँककर उसका धुँवाँ दूर किया, फिर विल्सनसे कहा, "देख लिया करिश्मा? चिड़ियाँ उड़ गईं। यह तो तबकी हालत है जब मैंने सिर्फ़ फ़ायर भर किया है, निशाना नहीं साधा। निशाना भी साध दिया होता तो एकाध चिड़ियाँ ज़मीनपर आ जातीं।"

सवेरा था। सूरज अभी-अभी निकला था। कातिकका महीना। हल्के तौरसे हवा बह रही थी। हम लोग चिड़ियोंके शिकारपर निकले थे, इसलिए उमंगके मारे हमारा दिल लोटन-कबूतर हुआ जा रहा था। तबीयतमें हज़ारों गौरइयाँ फुदक रही थीं। दिमाग़में बुलबुलें चहक रही थीं। मुझे गानेकी सूझी। इस-लिए समयको देखते हुए, चिड़ियोंसे सम्बन्ध रखनेवाला मैंने यह गाना गुनगुनाना शुरू किया—

"क़द्र उल्लूकी उल्लू जानता है, हाँ।
हुमाको कब चुग़द पहचानता है, हाँ॥"

इस उत्कृष्ट कविताके साथ अपने फ़ौजी कण्ठका संगीत जोड़ते-जोड़ते मैं सचमुच ही उत्साहसे इतना फूल गया कि मुझे लगने लगा, मैं एक चिड़िया बन गया हूँ। मेरे पाँव तेजीसे चलने लगे। कई बार उड़ते-उड़ते बचा।

पर विल्सनने उसी समय मेरे पर कतर दिये। यानी मुझे रोक लिया। ख़ुद भी वह चुपचाप खड़ा हो गया और कानपर हाथ रखकर दूर एक झाड़ीसे आती हुई आवाज़को सुनने लगा। कोई "किट लौं" "किट लौं" बोल रहा था। उसने धीरेसे पूछा, "यह क्या है?"

अब आपको बता दूँ कि मैं आवाज़ सुनते ही जान सकता हूँ कि यह आदमी बोल रहा है, या कोई चिड़िया बोल रही है, या चौपाया बोल रहा है। आप इसे चाहे जितना कठिन समझें पर शिकारकी दुनियामें रहते-रहते ध्यान देनेपर आदमी यह तो जान ही जाता है। अतः मैंने विल्सनसे कहा, "पार्टनर, घबरानेकी

बात नहीं। न तो यह तेन्दुवा है, न भेड़िया ही है। यह एक चिड़िया है।"

विल्सनने फिर धीरेसे पूछा, "कौन-सी चिड़िया ?"

मैंने कहा, "ब्लैक पैट्रिज। काला तीतर। चाहे जाकर देख लो।"

मैंने यह बात इतने उल्लाससे कही कि मेरी आवाज़ कुछ ऊपर खिंच आई। यानी मैं इतने ज़ोरसे बोला कि मेरी आवाज़ उस झाड़ी तक पहुँच गई और काला तीतर बोलते-बोलते चुप हो गया।

विल्सन कहने लगा, "काला तीतर! काला तीतर! यह तो बड़ी लज़्ज़तदार चिड़िया होती है। बुन्देलखंड या किसी भी ऊबड़-खाबड़ इलाक़ेमें पाई जाती है। जुते हुए खेतोंमें या छोटी-मोटी झाड़ियोंके इर्द-गिर्द बैठती है। पैरोंसे चलती है और पंखोंसे उड़ती है···।"

मैंने कहा, "तुमने ख़ूब याद किया है। यह भी याद कर लो कि यह "किट लौं", "किट लौं" करती है। अब जाओ, झाड़ीके पास जाकर इसे ही मारनेकी कोशिश करो। झीलका प्रोग्राम छोड़ दो।"

विल्सन धीरे-धीरे झाड़ीकी ओर बढ़ा। चलते-चलते उसने पूछा, "और तुम ?"

मैंने समझाया, "देखो विल्सन, मेरी आवाज़ भर सुनकर चिड़िया इतना डर गई है कि उसने बोलना बन्द कर दिया है। अब अगर मैं उसपर फ़ायर भी कर दूँ तो वह ज़रूर मर जायगी।

मैं शिकारमें इतनी बुज़दिली नहीं पसन्द करता। झाड़ीके पास तुम्हीं जाकर देखो, शायद तुम उसका शिकार कर सको। आज चिड़ियोंका शिकार झीलमें न होगा। आज हम तीतर मारेंगे।"

विल्सन मेरी बात समझ गया, और झाड़ीकी ओर चल पड़ा। झाड़ी तक जानेमें उसने 'स्टॉकिंग' वाली तरकीब दिखाई। अर्थात् वह धीरे-धीरे चला। कभी पंजोंके बल, कभी घुटनोंपर चला, कभी दोनों हाथों और पैरोंपर चला, कभी जूते उतारकर चला और कभी जूते पहने हुए चला। कभी जुते हुए खेतमें उकड़ूँ होकर बैठा। कभी खेतकी मेड़पर छातीके बल लेटकर घिसटते हुए चला। इस दौरानमें उसकी निगाह एक झाड़ीसे दूसरी झाड़ीकी ओर जाकर चारों ओर तैरती-सी रही। इस तरह सौ ग़ज़का फ़ासला उसने आधे घंटेमें तै कर डाला। उसके घुटने छिल गये। मुँहपर पसीना झलक आया, सामने कमीज़ और ब्रीचेज़ मटमैली हो गई। हमने किताबोंमें पढ़ा था कि चलकर यानी 'स्टॉक' करके शिकार करनेमें इंसान ख़ुद शिकार हो जाता है। विल्सनने इतनी मेहनत करके साबित कर दिया कि किताबकी यह बात बिलकुल सही है।

झाड़ीके सामने, बन्दूक़को दोनों हाथों मजबूतीसे पकड़े हुए, शरीरके ऊपरी भागको नीचेकी ओर झुकाकर समकोण-सा बनाते हुए विल्सन धीरे-धीरे इधर-उधर टहलता रहा। तभी उस झाड़ीसे फिर आवाज़ आई, "किट लौं, किट लौं।" साथ ही आस-पास-की कई और झाड़ियोंसे उसके जवाबमें तीतरोंने कहा, "किट लौं", "किट लौं।"

देखते-देखते पूरबकी झाड़ीवाले तीतरों और पच्छिमकी झाड़ीके तीतरोंमें बाक़ायदे अन्त्याक्षरी-सी छिड़ गई। मैं साहित्यिक आदमी हूँ। इसलिए मेरी तबीयत फड़क उठी। क्या रियाज़ था! होता यह था कि एक तीतरके मुँहसे "किट लौं, किट लौं" की समके ऊपर कविता ख़तम नहीं हुई कि दूसरेने तड़से जवाबी जड़ दी।

पर इसी बीचमें विल्सनने ज़ोरसे फ़ायर किया। वैसे तो जब बन्दूक़से फ़ायर होता है तो ज़ोरकी आवाज़ निकलती ही है पर इस तीतरके शिकारके लिए मुझे लगा कि फ़ायर कुछ ज़्यादा ज़ोरसे हो गया। चिड़ियाँ बेतहाशा उड़कर भाग चलीं। कुछ तीतर मेरी ओर भी उड़कर भागे। विल्सनने वहींसे पुकार-कर कहा, "भागने न पाये। बन्दूक़ चलाओ।"

मैंने अचकचाकर चिड़ियोंकी ओर बन्दूक़ तान दी। ज़ाहिर है कि चिड़ियोंपर बन्दूक़का असर तभी होगा जब उसके अन्दर कारतूस भी हो। इसलिए मेरा बन्दूक़ दिखाना एक तरहसे बेकार साबित हुआ। साथ ही उसी समय मुझे अपना एक सिद्धान्त भी याद आ गया। इसलिए तीतर उड़कर दूसरी झाड़ियोंमें छिप गये। सौदा बराबरका रहा। न कुछ मेरा नुक़सान हुआ, न तीतरोंका ही नुक़सान हुआ।

विल्सनने मुझे डाँटा कि मैंने बंदूक़ क्यों नहीं चलाई, तब मैंने उसे अपना सिद्धान्त समझाते हुए कहा, "सुनो विल्सन, मैं सिद्धान्तप्रिय आदमी हूँ। क्या शिकार और क्या अख़बार, जहाँ-जहाँ मेरे करिश्मे दीख पड़ते हैं, वे सब किसी न किसी सिद्धान्तके

अन्तर्गत होते हैं। मैं उड़ते हुए या भागते हुए जानवरपर वार नहीं करता।"

अब मैंने जब इस पैमानेकी बात शुरू की तो विल्सनकी आँखोंमें एक अजब-सी बेवक़ूफ़ी छलछला आई। मैं समझ गया कि उसे कुछ और समझाना पड़ेगा। इसलिए मैं कहता गया, "मैं इसे बुज़दिली समझता हूँ। शिकार बहादुरीका काम है। जो चिड़िया ख़ुद उड़कर भाग रही हो उसे मारनेके लिए फ़ायर करनेकी क्या ज़रूरत है। और जब वह ख़ुद ही उड़ चली तो उसकी जान लेनेसे क्या फ़ायदा। मैं बराबरीका शिकार करता हूँ।"

विल्सनने पूछा, "बराबरीके शिकारका क्या मतलब ?"

अब मेरी आवाज़में बहादुरीकी खनक आ गई। मैं अकड़-कर कहने लगा, "बराबरीका शिकार उसे कहते हैं कि इस तरफ़ मैं दम साधकर चुपचाप, बंदूक़ लेकर बैठ जाऊँ और थोड़ी दूर-पर उस तरफ़ चिड़िया या जानवर, जो कोई भी शिकारके लिए आया हो, उसी तरह चुपचाप दम साधकर बैठ जाय। मैं उसे देखूँ और वह मुझे देखे। तब असली शिकार होता है। और भागते हुए जानवरोंपर गोली चलानेमें शिकारकी तौहीन होती है। यह मत समझना कि मुझे भागते हुए जानवरपर अपने निशा-नेका भरोसा नहीं है। मैं शिकारकी तौहीन नहीं कर सकता। बस यही बात है। समझ गये, पार्टनर। मैं तो असली शिकार करता हूँ।"

पर विल्सन मेरी बातका आख़िरी अंश नहीं सुन पाया। उसे

सचमुच ही पासकी एक झाड़ीमें एक चिड़िया पत्तोंकी आड़में छिपी-सी दीख पड़ गई थी। इसलिए वह ज़मीनपर बैठ गया। इतमीनानसे उसने उस चिड़ियापर निशाना लगाया। बहुत देर रुककर, हाथ साधकर, उसने बंदूक़ दाग दी। यह असली शिकार था। चिड़िया मर गई।

हम लोगोंने झाड़ीको घेर लिया और मरी हुई चिड़ियाका पता लगाने लगे। पर पता लगनेमें देर न लगी। चिड़िया मर गई थी और इधर-उधर इस तरहसे फैल गई थी कि पता लगना कठिन था कि कितनी चिड़ियाँ एक साथ मर गई हैं। विल्सनने साँस खींचकर कहा, "यह तो सिर्फ़ आधा तीतर है।"

मैंने उसे दिलासा देते हुए कहा, "पार्टनर, इसी तरह किसी एक बड़े शिकारीने कभी एक तीतर मारा था और उसके साथ एक बटेर भी मर गई थी और तबसे "आधा तीतर आधा बटेर" की कहावत चालू हो गई है। पर यह पुराना रिकार्ड था। आज तुमने कमालका काम किया है। तुम्हारे एक ही फ़ायरमें आधा तीतर और चार-पाँच आधे बटेर निकल आये हैं। यह नया रिकार्ड है। तुम्हारा निशाना ग़ज़ब का है। तुम्हारे कारतूसको कमाल हासिल है। तुम्हारी बंदूक़में सुर्ख़ाबके पर लगे हैं।"

हुआ यह है कि जबसे लोगोंने मेरी भाषण-कलाकी तारीफ़ कर दी है तबसे किसीकी भी तारीफ़ करनेमें मैं भाषण-कलाका इस्तेमाल कर बैठता हूँ। इसलिए मेरी बातसे विल्सन बहुत ही प्रभावित हुआ। वह इतना प्रभावित हुआ कि बन्दूक़से ख़ाली कारतूस निकालकर मेरे हाथमें देते हुए कहने लगा, "यह गोली

वाला कारतूस है। मैंने इसीके सहारे आधे तीतर और पाँच आधे बटेरोंका रिकार्ड क़ायम किया है। इसे अजायबघरमें रखना चाहिए।

मनमें आया कि विल्सनको ही अजायबघरमें भेज दूँ। उसने तीतरके ऊपर छर्रेदार कारतूसका इस्तेमाल नहीं किया था। उसपर गोली चलाकर उसने तीतरके साथ-ही-साथ एक पुरानी कहावतके भी टुकड़े-टुकड़े कर दिये थे। पूरा तीतर तो हाथ नहीं लगा पर एक नया रिकार्ड तो विल्सनके हाथ लग ही चुका था। इसलिए उसका उत्साह बढ़ाते हुए मैं कहने लगा, "सचमुच ही यह कारतूस कमालका है। यह बन्दूक़ भी कमालकी है।"

तभी विल्सनको मेरी पहली बात याद आ गई। बोला "पार्टनर, तुम कहते हो मेरी बन्दूक़में सुर्ख़ाबके पर लगे हैं। जहाँ तक मैंने पढ़ा है, सुर्ख़ाब एक चिड़ियाका नाम है। उसके पर बन्दूक़में कैसे लग सकते हैं?"

मैंने रहस्यकी हँसी हँसकर कहा, "पार्टनर, यह बात समझानेके लिए कभी सुर्ख़ाबका शिकार करने चलना पड़ेगा। आज तुमने तीतरका शिकार कर लिया है। इतना बहुत है। अब चलो, लौट चलें।"

हम लौटे। लौटते समय लगता था, विल्सनके पाँवोंमें पंख लग गये हैं। अब उसकी आवाज़में बुलबुलें चहकने लगी थीं, और तबीयतपर अबाबीलें फुदक रही थीं। हँसते हुए उसने कहा, "पार्टनर, तुम लाजवाब आदमी हो। जाननेवाले ही तुम्हारी क़दर जान सकते हैं।"

और इस बार विल्सन तबीयतसे गाता हुआ लौटा,

"क़द्र उल्लूकी उल्लू जानता है, हाँ।"

हवाएँ फुरफुराती हुई बहती रहीं। दूरकी झाड़ियोंमें तीतरोंने इस बार कवि-सम्मेलन-सा करना शुरू कर दिया। पर हम रुके नहीं और आधा तीतर लेकर वापस लौट आये।

शोध

बया और बन्दरकी कहानी : एक रिसर्च स्कॉलरकी ज़बानी

एक जंगलमें एक बया[1] रहता था। उसने एक बबूलकी कँटीली डालपर अपना घोंसला बना लिया था। इधर-उधरसे तिनके बटोर-कर यह घोंसला बनाया गया था। कटीली डालपर अपने शान्त

१—"बया एक चिड़ियाका नाम है।" देखिए 'अवर बर्ड्स', लेखक पी० स्मिथ, (पृ० १२३)। "वह जंगलमें रहती है और बस्तीमें भी।" (वही, पृ० १२४)। "चिड़िया वह है जिसके पैर भी हों और पंख भी" (वही, पृ० १२)। "मनुष्यके पैर ही होते हैं, पंख नहीं।" (पृ० १३)। "चिड़िया चिड़िया है, आदमी आदमी। केवल उल्लू एक ऐसा है जो दोनों कोटियोंमें होता है।" (वही पृ० १४); साथ ही देखिए, श्री केशवचन्द्र वर्माकी "एक ईसपनुमा कहानी।"

इस बाल-कथामें आख्येय बयाके वनमें निवास करनेका एक रहस्य है। मानवीय जीवनसे व्यतिरिक्त परिस्थितियोंमें बयाको रखकर उसमें जिन गुणोंका समावेश किया गया है, उससे यही साध्य है कि मानव जातिमें वे गुण क्षीण हो चुके हैं। यदि बया का निवास-स्थान वन न होकर कोई वाटिका होती तो सम्भवतः मानवीय क्षेत्रमें प्रचलित झूठ, बेईमानी, छल, कपट, प्रपंच आदि स्वाभाविक मानवतत्त्व बयामें समाविष्ट हो जाते। (देखिए, पक्षी-मनोविज्ञान, पृ० ३)

और सुखी घोंसलेमें बया अपनी पत्नीके साथ सानन्द जीवनयापन करता था।[1]

१—इसी परिस्थितिको ध्यानमें रखकर डॉ० एम० एस० गुप्त, एम० पी० ने 'पंचवटी' में लिखा है—

"जितने कष्ट कंटकोंमें हैं
जिनका जीवन सुमन खिला।
गौरव गन्ध उन्हें उतना ही
यत्र - तत्र - सर्वत्र मिला।"

बयाके इस प्रकारके जीवनसे उत्तरकालीन छायावादी कवियोंने (अर्थात् सन् १९२७ ई० से सन् १९४१ ई० के दीर्घ कालमें एक नयी साहित्यिक परम्परा क़ायम करनेवालोंने) एक ऐसे जीवन-दर्शनकी कल्पना की थी जिसमें एकान्त-कानन, शान्त-निशीथिनी, निभृत-नीड़, प्रेम, प्रेयसी आदिका समावेश हुआ था और जो जीवनको मानवीय तृष्णाओंसे परे ले जाकर एक शान्त सुस्थिर वातावरणमें बितानेकी राह दिखाता था।

"यह बयामार्गी दर्शन फ़ारससे चला था। उमर ख़ैयामकी रुबाइयोंके भ्रष्ट अनुवादके सहारे यह रोमाण्टिक रिवाइवलके कवियों-की वाणीमें पनपा। बादमें वह बंगालके रास्ते हिन्दी-साहित्यमें आया। आलोचक इस दर्शनको अभारतीय मानते हैं किन्तु यह ध्यानमें रखनेकी बात है कि बया शुद्ध भारतीय चिड़िया है और बयामार्गी दर्शन शुद्ध भारतीय दर्शन है।" (यह बात लेखक स्वयं कह रहा है पर चूँकि वह चाहता है कि इसका उपयोग विद्वानों द्वारा दर्शन-शास्त्रके किसी इतिहासमें हो अतः उसे उल्टे अर्धविरामों (इन्वर्टेड कामाज़) में बाँध दिया गया है।)

बयाके कुछ अण्डे-बच्चे भी थे जो उसी घोंसलेमें शान्तिके साथ पड़े सोया करते थे।

इस प्रकार रहते-रहते माघका महीना आया। पाला गिरने लगा। पछुआ ज़ोरसे बहने लगी। शीत और तुषारके मारे हाथ-पैर ठिठुरने लगे। बबूलके पीले फूल झर गये। उसकी बीजदार फलियाँ कड़ी पड़ गईं। उसकी शाखाएँ और भी काली हो गईं। तनेमें चिपका हुआ गोंद सूख गया। उसमें दातून लायक़ कोमल लकड़ीका मिलना भी कठिन हो गया। उसके काँटे तक सड़ गये। परन्तु बया आनन्दपूर्वक, सपत्नीक, सन्तान-सहित, अपने शान्तिमय घोंसलेमें जीवन-यापन करता रहा।[1]

सहसा एक दिन बादल घिर आये। हवा और ज़ोरसे बही। बिजली चमकी। और ओलोंकी एक भयंकर बौछारके बाद पानी वेगके साथ गिरने लगा। चारों ओर अँधेरा-सा छा गया। जंगल-की भयानकता बढ़ गई।[2]

१—बयामार्गी दर्शनमें इस प्रकारके आचरणसे बाह्य प्रकृतिकी हीनता सिद्ध की गई है। बयामार्गीके लिए आवश्यक है कि वह अपने शान्त निभृत-नीड़में सानन्द पड़ा रहे, उस नीड़का आधार भले ही अनेक परिस्थितियोंमें विनाशकी ओर जा रहा हो। बाह्य परि-स्थितियोंकी विषमता बयामार्गीकी निभृत-नीड़-प्रियताको आघात नहीं पहुँचा सकती। (देखिए, एस० लालका 'प्रकृति और पला-यनवाद' पृष्ठ ३०५।)

२—देखिए 'वर्षा वर्णन', 'पद्मावतीका विरह' (पद्मावत, एम० एम० जायसी द्वारा लिखित।) साथ ही देखिए, 'वर्षा वर्णन'

जब बिजली चमकी तो बयाने अपना सर घोंसलेसे बाहर निकाला।[1] उसने देखा कि घोंसलेसे कुछ ही दूर एक बन्दर बैठा

(टी० दास द्वारा लिखित 'रामचरितमानस' के किष्किन्धा-काण्डमें।)

बयामार्गी-दर्शनमें वर्षा, करकापात आदि को बाह्य परिस्थितियोंकी विषमताका द्योतक माना गया है। क्योंकि वर्षामें बया अपने निभृत-नीड़के लिए तिनके चुनकर नहीं ला सकता। मानवीय जीवनमें वर्षाका क्या महत्त्व है, इस विषयमें मतभेद है। परन्तु यह सब मानते हैं कि वर्षाका महत्त्व साधारण नहीं है। (देखिए, 'प्रकृति और पलायनवाद' पृ० ५१०, साथ ही देखिए 'ए सर्वे आन इण्डियन ऐग्रिकल्चर', पृ० २०३।)

१—कभी-कभी बयामार्गी बाह्य परिस्थितियोंका आनन्द लेनेके लिए अपनी स्थितियोंसे ऊपर सर उठाता है। पर वह अपनी स्थितियोंमें इतना अभिभूत होता है कि उसे अन्य परिस्थितियाँ कौतुक-जनक तथा विचित्र-सी जान पड़ती हैं। (देखिए, वही 'प्रकृति और पलायनवाद', पृ० ५५०।)

"बयाके घोंसलेका दरवाज़ा नीचेसे होता है। अतः बया जब सर बाहर करके कुछ देखना चाहेगा तो उसे सब कुछ उल्टा दिखाई पड़ेगा।"

(प्लुटार्क लिखित 'पशु-पक्षियोंकी विचित्र बातें', पृष्ठ २०३, छठा संस्करण।)

हुआ है।[1] बन्दर विना किसी सहारेके पेड़की डालपर चुपचाप घुटनेमें मुँह छिपाये बैठा था। पानीकी बूँदें तेज़ हवाके कारण तिरछी होकर उसके शरीरपर पड़ रही थीं। वह सर्दीमें काँप रहा था। बयाको उसपर दया आ गयी।[2] उसने बन्दरसे कहा, "ऐ भाई,[3] तुम क्यों इस घोर वर्षामें कष्ट उठा रहे हो? तुमने शायद

१—"बन्दर दो स्थितियोंका प्रतीक है: एक तो मनुष्यकी आदिम संस्कृतिका, दूसरे प्रकृतिमें जो कुछ भी क्षिप्र, चंचल और हानिकारक है उस सबका।" (रिसर्चेज़ इन ऐन्थ्रापॉलजी, एजुकेशन ब्यूरो मैगज़ीन, ऐनुअल नम्बर, पृ० २०१)

बन्दरमें मानवीय संस्कृतिके तथा प्रकृतिजन्य संस्कारोंके सभी तत्त्व एक साथ मिलते हैं। शायद इसीलिए उसका सामना बयासे कराया गया है जो बयामार्गी दर्शनका प्रवर्तक है।

२—"बयामार्गीको अपने निभृत-नीड़में बैठे-बैठे बाह्य परिस्थितियोंसे आक्रान्त जन्तुपर प्रायः दया आ जाती है। दयासे उसके मनमें समवेदना उत्पन्न होती है। समवेदनासे समझ आती है। समझसे वाद निकलते हैं। वादसे विवाद निकलते हैं। विवादसे बयामार्गीके मनमें निभृत-नीड़के प्रति और भी आस्था बढ़ती है।"

"बयामार्गी राजनीतिमें आरामकुर्सीवादी, कलामें पलायनवादी, साहित्यमें साधनावादी, दर्शनमें आस्थावादी, छायामें प्रकाशवादी और प्रकाशमें छायावादी होता है।" (देखिए, सुभाषित संचय)

३—इसी परम्परासे फ्रांसकी राज्यक्रान्तिमें भ्रातृत्वका सिद्धान्त स्वीकार हुआ जिसकी चरम परिणति नैपोलियनके शासनकालमें हुई। "भाइयो और बहनो!" "प्यारे भाइयो!" की चलताऊ चीज़ोंसे लेकर "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावनाका उद्वेग इसी सम्बोधनसे निकला है।

मेहनत करके अपना घर नहीं बनाया।[१] इसी कारण तुमको इतना कष्ट हो रहा है। देखो, हमने कितना सुन्दर घोंसला बना लिया है।[२] इसीसे हम इस बरसात और जाड़ेमें भी सुखी हैं। तुम भी अगर आलस त्यागकर अपना घर बना डालो तो तुम्हें इस भयंकर ऋतुका कष्ट न झेलना पड़े।[३] ऐ भाई, साहस और पुरुषार्थसे काम लो।"[४]

बन्दरको न जाने क्या सूझा कि वह दाँत निकालकर घोंसलेपर झपटा।[५] उसने बयाके अंडे तोड़ डाले। उसका घोंसला उजाड़ दिया।[६]

१—'-बयामार्गी दूसरेके कष्टको अपने कष्टकी मापसे नापता है। चूँकि उसके पास एक निभृत-नीड़ है अतः वह दूसरेके कष्टका अन्दाज़ उसके बे-घरबार होनेमें ही कर सकता है।'

२—दूसरोंसे समवेदना प्रकट करनेमें यह आवश्यक है कि समवेदी समवेद्यके स्तरपर आये। किन्तु बयामार्गी अपने कृतित्वका डंका पीटकर दूसरे अकृतीके प्रति समवेदना प्रकट करता है।

३—दूसरेको उपदेश देना बयामार्गीका जन्मगत अधिकार है। वह स्वयं घोंसलेमें रहते-रहते दूसरोंको घोंसलावादी बनाना ही अपना परम कर्त्तव्य मानता है।

४—बयामार्गी साहस और पुरुषार्थमें इसीलिए इतनी आस्था रखता है कि उसे साहस और पुरुषार्थ दिखानेका अवसर कभी नहीं मिलता। स्वभावजन्य संचय-वृत्तिको ही वह साहस और पुरुषार्थ मानता है।

५—यह अनावश्यक और मौखिक सहानुभूतिके मुक़ाबले कष्टमें पड़े हुए दुःखी और विकृत मनका पुरुषार्थ मात्र है।

६—"जब दुःखी मन और कुछ नहीं कर पाता तो उसे असहायताकी स्थितिसे उन्माद उत्पन्न होता है। उन्मादमें कुछ भी प्रोत्साहन

बया घबड़ाहटमें कुछ और न करके चीख़ने लगा। उसका घोंसला उजड़ गया और वह अपनी पत्नीके साथ दुखी होकर उजड़े हुए घोंसलेपर शोक प्रकट करता रहा।[1]

सच है, नीचको कभी अच्छी सलाह न देनी चाहिए।[2]

मिलनेपर वह अप्रिय वस्तुओंका विनाश प्रारम्भ कर देता है।"
(देखिए, 'सुभाषित संचय')

१—बन्दर, जैसा कहा गया है, बाह्य परिस्थितियोंका प्रतीक है। उसके द्वारा अपने निभृत-नीड़के नष्ट होनेपर बयामार्गी शोक प्रकट करता है। उर्दूमें इस शोक-प्रकाशपर अनेक कविताएँ लिखी हैं। देखिए, 'जिगर' का "इसी चमनमें हमारा भी एक ज़माना था। यहीं कहीं कोई छोटा-सा आशियाना था।" ऐसी कविताएँ सदा लिखी गई हैं और लिखी जायेंगी।

२—यह कहानी तभी लाभप्रद हो सकती है, जब कौन नीच है और कौन नीच नहीं है, इस भेदको समझ लिया जाय।

देखिए, 'महाभारत' "नापृष्टः कस्यचिद् ब्रूयात्"।

अर्थात् जब तक कुछ पूछा न जाय तब तक कुछ न बोले।

बयामार्गीने इस नेक सलाहका पालन नहीं किया। इसीसे वह दुःखको प्राप्त हुआ। बयामार्गी ऐसे ही कारणोंसे दुःखको प्राप्त होता है।

ग्रन्थविषयक टिप्पणीः—

इस लेखमें दिये गये जो ग्रन्थ आपको प्राप्त न हों उन्हें आप अप्राप्य समझें।

यात्रा

बैलगाड़ीसे

बहुत दिनकी बात है, तब मैं उन्नीस सालका था और कॉलिज-में पढ़ता था। उस साल दशहरेकी छुट्टियोंमें एक मित्रके बुलानेपर दो मित्रोंके साथ मैं उसके गाँवके लिए शहरसे चल पड़ा। हम घरसे ताँगेपर चले। ताँगेने हमें बड़े स्टेशनपर छोड़ा। वहाँ हमें रेलगाड़ी मिली। रेलगाड़ीने हमें एक छोटेसे स्टेशनपर उतारा। वहाँ हमें बैलगाड़ी मिलनी थी। बारह मीलका रास्ता था।

हम लोग अपने स्वागतके लिए किसीकी प्रतीक्षा कर रहे थे। तभी एक निहायत गन्दे आदमीने आकर हमें सलाम किया। मैंने पूछा, "क्या चाहते हो ?"

गन्दे आदमीने कहा, "आप ही लोग शहरसे आये हैं हुजूर ? चलिए, रामबाबूने बैलगाड़ी भेजी है।" इतना कहकर सड़े हुए दाँतोंकी एक टेढ़ी-मेढ़ी क़तार दिखानेके लिए उसने अपना मुँह फैलाया और, फिर बिना किसी कारण या प्रोत्साहनके हँसीकी एक फुलझड़ी छोड़ दी।

शहरसे आनेमें या रामबाबूके बैलगाड़ी भेजनेमें कोई हँसीकी बात है या नहीं, इसपर बिना सोचे ही हम लोग इस गन्दे आदमी-के पीछे-पीछे चल दिये। इस बीचमें मैंने उससे पूछा, "तुम गाड़ी-वान हो ?" जवाबमें उसने हँसीकी एक दूसरी फुलझड़ी छोड़ दी।

हम लोग स्टेशनसे बाहर एक बरगदके पेड़के पास पहुँचे। दिनके ग्यारह बजे थे। कुवारका महीना था। चारों ओर चमकती

धूप। बीचमें गहरी, काली छाँह। मेरे दो साथियोंमें एक साहित्य और दर्शनके विद्यार्थी थे। इसी बातके सबूतमें उन्होंने कहा, "इसी छायाको देखकर कविने कहा होगा, 'कहो कौन तुम दमयंती-सी···'।"

पर मेरी निगाह उस गन्दे आदमीपर थी जो पेड़के नीचे जाकर एक बैलगाड़ीके पास खड़ा हो गया था। वहीं दो बैल बैठे हुए थे—एक सफ़ेद, एक काला। बीचमें ज़मीनपर भूसे और ज्वारकी कुट्टीके कुछ टुकड़े पड़े थे। ज़ाहिर था कि बैलोंने पेट भर-कर भोजन किया है। अब वे आँख मूँदे बड़े ही शान्त और संयत भावसे जुगाली कर रहे थे। ऐसे वातावरणमें मुझे दमयन्ती का ख़याल नहीं आया। बल्कि मुझे लगा कि मैं किसी आश्रममें आ गया हूँ। इसलिए मैंने अपने दार्शनिक साथीसे कहा, "भाई, तुम्हारे विचार ही गर्हित हैं। यहाँ दमयन्ती कहाँ! यह तो वट-वृक्षकी छाया है। दोनों बैल उन महर्षियोंकी भाँति हैं जिन्होंने सांसारिक प्रपंचका जुआ अपने कंधोंसे उतारकर फेंक दिया है। अब वे आँख मूँदकर परमहंसोंकी भाँति बैठे हुए हैं।"

मेरे दूसरे साथी राजनीतिके विद्यार्थी थे। वे बोले, "और देखो तो, एक बैल काला है, एक सफ़ेद है। पर इनमें काले-गोरे-का भेद-भाव नहीं है। ये दोनों एक ही जगह बैठकर खाना खाते हैं। कन्धेसे कन्धा मिलाकर चलते हैं। एक ही बैलगाड़ीमें साथ-साथ जुतते हैं। इन बैलोंसे उन बहुतसे देशोंको शिक्षा मिल सकती है, जहाँ वर्ण-भेदके कारण···।"

"हट-हट्, तिक्-तिक्" की ज़ोरदार आवाज़ने मेरे राजनी-तिक मित्रको यहीं रोक दिया। हमने देखा, वह गन्दा आदमी

इस मन्त्रको बार-बार दुहरा रहा था और तालू, जीभ और गलेके प्रयोगसे ऐसे-ऐसे स्वर निकाल रहा था कि दोनों बैल पूँछ फटकारकर खड़े हो गये थे। उन्होंने मुँहका फेना ज़मीनपर गिरा दिया, नाकसे ज़ोरदार साँस निकाली, सींग हिलाकर गलेकी घण्टियाँ बजाई और इस तरह ऐलान कर दिया कि दो महर्षि फिरसे संसारका जुआ अपने कंधोंपर रखनेको तैयार हो रहे हैं।

गन्दे आदमीने हमारे देखते ही देखते बैलगाड़ीमें ढेरसे पुवालके ऊपर एक टाटका टुकड़ा बिछाकर हमारे बैठनेका इन्तज़ाम कर दिया। बैठनेके पहले हमने उस गाड़ीको एक निगाह देखा। यह न तो ऐसी गाड़ी थी जो "चरमर चरमर चूँ चररमरर" वाले स्तरकी होती है; जिसपर भूसा, ग़ल्ला, ईंटा ढोया जाता है और जो पूँजीवादी व्यवस्थाकी मज़बूतीके लिए काममें लाई जाती है। न यह ऐसा सूक्ष्म और सुन्दर शकट ही था जिसपर मृच्छकटिककी नायिका वसन्तसेनाने अपने परिभ्रमणका सुख उठाया होगा। यह एक मझोले क़दकी गाड़ी थी। इसकी सतहपर गोबर और खादके पुराने निशान बने थे, जिससे ज़ाहिर था कि इसका प्रयोग 'अधिक अन्न उपजाओ' आन्दोलनमें होता रहा है। साथ ही इसके पहियोंके 'हब'से रेंड़ीका तेल अब तक चू रहा था, जिससे ज़ाहिर था कि गाड़ीको बहुत दिन बाद पहियोंपर लाया गया है।

गाड़ीमें बैल जुत गये। महर्षि लोग गृहस्थाश्रममें आ गये। हम तीनों अन्दर बैठे, हमारे ऊपर चादरेका हुड फैला दिया गया। गाड़ीवानने, जो हमारे पास बैठनेके कारण अब गन्दा आदमी कहलानेसे बच रहा है, गाड़ी चला दी। गाड़ी घरघराती

हुई छाँहसे धूपमें, स्टेशनसे मैदानमें और मैदानसे उतरकर एक सँकरे गलियारेमें आ गई। यहाँ बैलोंका उत्साह धीमा हो गया। आन्दोलनकी प्रगति ढीली हो गई। गाड़ी धीरे-धीरे डेढ़ मील फ़ी घंटेकी चालपर उतर आई। गाड़ीवान भी पहले तो "हट्-हट्, तिक्-तिक्" का नारा लगाता रहा। फिर बैलोंको कोसने लगा। फिर उन्हें पुचकारने लगा। फिर चुप हो गया। फिर हमारी ओर पैर फैलाकर बैठ गया। फिर लेट गया। फिर सो गया।

बैल धीरे-धीरे चलते रहे।

मेरे मनमें, न जाने क्यों, बड़े ही उदात्त भाव पैदा हो रहे थे : इस गाड़ीको बैल चलाते हैं। बैल धर्मका प्रतीक है। अतः बैल-गाड़ी वह गाड़ी है जो धर्मसे चलती है। यह हमारी धर्मधुरीण प्राचीन संस्कृतिका उपलक्षण है। इसके सहारे हमारी संस्कृति जहाँ थी, वहीं है और वहीं रहेगी। हम स्पुटनिक और रॉकेटवाले देशोंका मुक़ाबला भले ही न कर सकें, पर हमने भी कछुए और ख़रगोशकी कहानी पढ़ी है और जब तक हमारी बैलगाड़ीका कछुवा सत्यताकी लीकपर चल रहा है, हमें हारका डर नहीं है···।

मेरे मनमें ऐसे ही भाव उमड़ रहे थे कि गाड़ीका एक पहिया किसी गड्ढेमें धक्का खाकर नीचे गया फिर ऊपर निकल आया। हमें लगा कि हमारी कमरके पाससे जिस्मको गन्नेकी तरह किसीने तोड़ दिया है। पर हमारे दार्शनिक मित्र बोले, "बैलगाड़ीके पहिये ऊपर-नीचे जाकर हमें दुख-सुखके चक्रोंका पाठ पढ़ाते हैं।"चक्र-वत् परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च।"

मैंने भी जवाब दिया, "बैलगाड़ी ही हमारे दर्शन और काव्य-

का आदि स्रोत है। तभी कालिदासने कहा है, "नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण।"

इसी बीचमें बैलगाड़ीका पिछला हिस्सा एक ओरको झुककर ज़मीनसे सट गया। जुआ उछलकर आसमानकी ओर ताकने लगा। हम लोग बालूके बोरोंकी तरह एक दूसरेपर लुढ़क गये। हुआ यह था कि गाड़ी लीकसे बाहर घूमकर एक गड्ढेमें जा पड़ी थी। दोनों बैल जुएसे बाहर निकलकर इस तरह सींगें हिला रहे थे और पूँछ फटकार रहे थे जैसे वे किसीका भी मुक़ाबला कर सकते हों।

गाड़ीवानने बैलोंकी नाथ खींचकर उनके मुँहपर ज़ोर-ज़ोरसे तमाचे लगाये, उन्हें गाड़ीमें जोता और फिर वह हँस-हँसकर कहने लगा, "बड़े तेज़ बैल हैं, हजूर। वो, वो, जो गुलाबी साफ़ा बाँधे हुए कोई साइकिलपर जा रहा है, उसीको देखकर भड़क गये थे। नये-नये काढ़े गये हैं, हजूर।"

इस बातका कोई जवाब नहीं था। गाड़ी फिर चल पड़ी। इसपर हमारे राजनीतिक मित्र बोले, "जैसे कालिदासको इस बैल-गाड़ीसे उत्कृष्ट साहित्यकी प्रेरणा मिली थी, वैसे ही आजकल यह प्रजातंत्रकी प्रेरक शक्ति है। ये बैल कैबिनेटके समान हैं। गाड़ी-वान प्रेसीडेंटका काम करता है जो बैलोंको चलाता है और नहीं भी चलाता है। यह गाड़ी, यह गाड़ीवान, ये बैल—ये सब हमारे हैं। हम जनता हैं।"

पता नहीं, मित्रका व्याख्यान कब ख़त्म हुआ। कुवारका महीना, हरियाली, आलसभरा घाम, ठण्डी हवा—इसने जादूका

काम किया। हम थके थे ही। कुछ ही देरमें एक-एक करके सो गये। गाड़ीवान पहले ही मुँहपर अंगोछा डालकर लेट गया था। गाड़ी धीरे-धीरे चलती रही।

अचानक किसीने मुझे जगाया। मैंने आँखें मलकर देखा। गाड़ी उसी बरगदके पेड़के नीचे खड़ी थी। मैंने और ध्यानसे देखा। हम स्टेशनके पास ही थे। गाड़ीवान बैलोंपर लगातार डंडे बरसा रहा था। हमें जगा हुआ देखकर उसने हँसीकी एक और फुलझड़ी छोड़ी और हमें समझाने लगा, "अरे हजूर, ये बैल ही गब्बू हैं। बड़े सीधे जानवर हैं, हजूर। इस इलाक़ेके लोग भी बड़े बदमाश हैं। मेरी ज़रा-सी आँख झप गई। बस किसीने बैलोंका मुँह मोड़ दिया, गाड़ी घुमा दी और फिर उसे स्टेशनकी ही तरफ़ चला दिया। दो कोस तक निकल गये थे, हजूर, फिर उतना ही वापस लौट आये।"

गाड़ीवानके हँसनेके पहले ही दार्शनिक मित्रने गम्भीरतासे कहा, "प्रगति एक मिथ्या तत्त्व है। हम चाहे जितना चलें, घूम-कर फिर वहीं आ जाते हैं।"

राजनीतिक मित्र बोले, "प्रजातन्त्र तभी सफल होता है, जब जनता जागती रहती है। यह सब हमारे ही सो जानेका नतीजा है।"

गाड़ीवानने हँसते हुए बैलोंको फिरसे गाड़ीमें जोत दिया। महर्षिगण फिर संसार-चक्रमें आ गये। "हट्-हट्" और "तक्-तक्" के साथ हमारी बैलगाड़ी फिर पुरानी लीकपर चल पड़ी।

संस्मरण

शॉका भूमिका-भाष्य

जार्ज बर्नार्ड शॉ अब मर चुके हैं। वे एक बहुत बड़े विचारक और नाटककार थे। वे आयरिश थे। आयरिश आयरलैंडके निवासीको कहते हैं। आयरलैंड इंगलैंडके पश्चिम है। पश्चिम उस दिशाका नाम है···।

पर बातसे बात निकालनेसे क्या फ़ायदा ? अब बर्नार्ड शॉ ज़िन्दा नहीं हैं, अतः बिना किसी खंडनकी आशंकाके मैं साफ़-साफ़ कहना चाहता हूँ कि मैं भी उनसे मिल चुका हूँ। मेरी उनकी काफ़ी देर बात-चीत हुई और मैं उनको कुछ ज्ञानपूर्ण बातें भी बता चुका हूँ।

विश्वास न मानते हों तो यों समझ लें कि मैंने उन्हें सपनेमें देखा और पूरी बात नहीं हुई।

हुआ यह कि मैंने एक नाटक लिखा। एक क्या, नाटक तो कई लिखे, पर मैंने यह नाटक लिखकर इसपर शॉसे भूमिका लिखानी चाही। तभी मैं उनसे मिला। सपनेका मामला ठहरा, इसलिए बातचीत रातमें ही हुई।

भारतीय रीति-रिवाजके अनुसार मैंने शॉको बताया कि मैं उन्हींकी बिरादरीका हूँ। ख़ुद भी नाटक लिखता हूँ, निरामिष-भोजी हूँ। मदिरा नहीं पिता, कभी-कभी टेढ़ी-मेढ़ी बातें भी कर लेता हूँ। इसलिए अपना ही आदमी समझकर शॉ मेरे नाटककी भूमिका लिखें।

शॉने मेरी ओर पैनी निगाहोंसे देखा और मुसकराये। मैंने कुछ परेशानीसे कहा, "मुझे आप अपना ही आदमी समझें। दाढ़ीकी कोई बात नहीं, मैं बढ़ा लूँगा।"

वे ज़ोरसे हँसे। मैं देखता रहा। वे बोले, "मैं तुमपर ख़ुश हूँ। तुम पहले हिन्दुस्तानी हो जो मतलबके लिए आये और आते ही मतलबकी बात कह बैठे। वरना, हिन्दुस्तानी जब किसी मतलबसे आता है तो घण्टा दो घण्टा निरर्थक बातें करता है, और जब जाने लगता है तो दरवाज़ेके पास ठहरकर धीमे सुरमें, कहता है, "अब एक छोटी-सी बात यह है···।"

हिन्दुस्तानी होनेके नाते संस्कारवशात्, हिन्दुस्तानियोंकी निन्दा करनेका अवसर मैं क्यों चूकता ? बोला, "ये सब जाहिलोंकी बातें हैं। मैं तो आपको बिरादरीका आदमी मानकर साफ़-साफ़ बातें कर रहा हूँ। इस नाटकपर आपकी भूमिका चाहिए।"

वे बिना किसी दिलचस्पीके बोले, "नाटकका हीरो क्या करता है ?"

मैंने कहा, "डाक्टर है।"

शॉने कहा, "डाक्टरीपर जो कहना था वह मैंने 'डॉक्टर्स डाइलेमा" में कह दिया है। अब मुझे कुछ भी नहीं कहना है।"

मैंने बोला, "उसमें एक ऐग्रेसिव टाइप नायिका भी है।" उन्होंने धीरेसे सिर हिलाया फिर बोले, 'मैन ऐण्ड सुपरमैन' पढ़िए।" मैंने कहा, "नाटकमें कुछ ग्रामीणता भी है।" वे बोले, 'पिगमैलियन' में सब मिल जायगा।" मैंने नाटकीयतासे कहा,

"बिरादर शॉ, फिर भी मेरा नाटक मौलिक है। इसपर आपको एक मौलिक भूमिका लिखनी ही होगी।"

सुनते ही शॉ सचेत होकर बैठ गये और ख़लील जिब्रानके किसी अतिमाननीय पात्रकी भाँति कड़ककर तीव्रतासे कहने लगे,

"ओ भूमिकाप्रेमी हिन्दुस्तानी, सुनो। मैंने नाटक लिखे हैं और नाटकोंकी भूमिकाएँ भी लिखी हैं। मैं भूमिकाओंका रहस्य जानता हूँ। इसलिए वह रहस्य तुम भी जान लो।

"भूमिका इसलिए होती है कि पाठक समझ लें कि लेखककी एक अपनी भूमि भी है। भूमिहीन लेखकोंके लिए भूमिकाका इसलिए और भी महत्त्व है। इसलिए नाटकके कई अंक काटकर एक भूमिका लिखना नाटककारकी बुद्धिमत्तामें शामिल है।

"जो दूसरोंसे भूमिका लिखाकर अपनी कृतिकी प्रशंसा कराते हैं वे वैसे ही हैं जैसे किसी पावरहाउसके निर्माता इंजीनियर जो किसी नेता द्वारा स्विच दबवाकर प्रकाशका उद्घाटन कराते हैं और भूल जाते हैं कि प्रकाशको वे ही लाये हैं।"

"जो अपने प्रकाशकसे प्रस्तावना लिखाते हैं वे अपनी पुस्तकके लिए विज्ञापन लिखानेके पैसे तो बचा लेते हैं पर अपनी पुस्तकको रजिस्टर्ड दवाओंके स्तरपर उतार देते हैं।

"जो पाठक भूमिका पढ़ते हैं वे प्रमाणित करते हैं कि पुस्तक उतनी पठनीय नहीं और जो पाठक भूमिका नहीं पढ़ते वे प्रमाणित करते हैं कि वे लेखकमें दिलचस्पी नहीं रखते, उसकी कृतिमें ही उनकी दिलचस्पी है।

"जो लेखक भूमिकामें अल्पज्ञ होते हुए भी पुस्तक लिखनेकी

क्षमा माँगता है उसे कभी क्षमा न करो। जो अपनी कृतिपर इतना लज्जित हो कि उसे दिखानेमें भी क्षमा माँगे उसे लज्जाके गढ़में इतना नीचे ढकेल दो कि वह दूसरी पुस्तक न लिख सके।

"जो भूमिकामें अपनी पहली कृति होनेके कारण क्षमा माँगता है वह मूढ़ है। उसे समझाओ कि उसने पहली बार जब प्रेम किया था तो अपनी प्रेयसीसे उसने इस बातकी क्षमा न माँगी होगी कि वह उसकी पहली प्रेयसी है।

"जो भूमिकामें यह कहता है कि सावधानीसे पढ़नेपर ही उसकी पुस्तकके गूढ़ तत्त्व पाठकोंपर प्रकट होंगे वह काइयाँ है। उससे होशियार रहो। वह उन ज्योतिषियों जैसा है जो भविष्य-वाणी ग़लत होनेपर भी अपनी ग़लती नहीं मानते और कुंडलीको ही ग़लत बताकर उसे दोष देते हैं।

"जो लेखक भूमिकामें बहुत अकड़कर बात करता है और अपनी पुस्तक-द्वारा जनसाधारणके विचारोंको मोड़ देनेका दावा करता है वह चालबाज़ है। उसकी बात समझ-बूझकर पढ़ो। वह सड़कपर जादूके खेल दिखानेवाले उन ठगों-सा है जिनको ठग समझकर भी तुम उनका खेल देखनेको रुक जाते हो और ज़्यादा-तर ठगे जाते हो।

"जो भूमिकामें विद्वत्तापूर्ण तथ्य रखनेकी कोशिश करता है और पुस्तकमें ढीली-ढाली बातें कहता है वह उन चलताऊ गव-इयों-सा है जो दो-चार रटी हुई तानें सुनाकर, अपनी संगीतज्ञता-की धाक जमाकर, बादमें आँखें मटकाते हुए सिनेमाके सस्ते गाने गाने लगते हैं।

"जो भूमिकामें हल्की-फुल्की बातें लिखकर पुस्तकमें गम्भीर बातें कहते हैं वे उन घटिया मेलके अध्यापकोंकी ,भाँति हैं जो जुलाईमें लड़कोंको टॉफियाँ बाटते हैं और अप्रैलमें बेत चलाते हैं।

"जो किसी उद्देश्यसे भूमिका लिखते हैं वे पुस्तकके उद्देश्यको नगण्य बना देते हैं।

"जो बिना उद्देश्यके भूमिका लिखते हैं वे पुस्तक भी विना उद्देश्यके ही लिख सकते हैं।

"जो विद्वान् कहलाते हैं और, स्वयं कोई कृति न देकर दूसरोंकी कृतियोंपर भूमिका मात्र लिखते हैं वे उन बधिया बैलोंके समान हैं जो हरियाली देखते ही डँकारने लगते हैं।

"जो दूसरोंकी पुस्तकमें भूमिका लिखते समय पहले तो पुस्तकीय विषयपर लम्बी-चौड़ी स्वतन्त्र चर्चा करते हैं और बादमें एक ही पंक्तिमें पुस्तक और पुस्तककारके भविष्यपर राय देकर अपने नामकी छाप छोड़ देते हैं वे प्रायः पुस्तक और पुस्तककार दोनों हीको नहीं जानते हैं।

"जो दूसरेकी पुस्तकमें भूमिका लिखते समय, लेखकसे अपना स्नेह सम्बन्ध जताकर, उसपर वस्तुपरक विचार नहीं देते और यह कहकर रह जाते हैं कि वे लेखककी प्रत्येक कृतिको केवल स्नेहकी दृष्टिसे देखते हैं, वे लेखकके प्रच्छन्न निन्दक हैं और उसकी कृतिको आलोचनाकी दृष्टिसे हेय समझते हैं।

"दूसरेकी पुस्तकपर भूमिका लिखते समय यदि किसीने प्रशंसा की तो वह ख़रीदा हुआ चारण-सा दीखने लगता है, निन्दा की तो विश्वासघाती-सा प्रकट होता है, तटस्थता दिखाई तो कोर्ट-

में पुकार लगनेपर पेटके दर्दका बहाना करके बाहर ही रुक जाने-वाले धोखेबाज़ गवाह-सा जान पड़ता है और अतिशय प्रेम दिखाया तो अपने काने लड़केको नयनसुख बतानेवाला जान पड़ता है।

"अतः विद्वानों और समझदारोंके लिए दूसरेकी पुस्तकपर भूमिका लिखनेका काम बहुत ही अप्रिय काम है। मैं विद्वान् हूँ और समझदार भी हूँ अतः मैं भूमिका नहीं लिखूँगा। मैं केवल अपने नाटकोंपर भूमिकाएँ लिखता रहा हूँ और उनको इतना लम्बा करके लिखा है कि वे स्वतन्त्र पुस्तकें बन गई हैं और भूमिका होनेकी गन्दी छाप उनपरसे उठ गई है।

"तुम बिरादरीवादी भारतीय हो। अपनी बिरादरीमें ही जा-कर घूमो। तुम्हें बहुतसे भूमिका-लेखक मिल जायँगे।

"जिस ओछेपनसे तुमने बात की है, वह तुम्हें यहाँ रुकनेका हक़ नहीं देता। तुम बाहर निकल जाओ।"

शॉने ये अन्तिम बातें चीखते हुए कहीं। मुझे सहसा बोध हुआ कि इन्हें गाँधीवादकी आवश्यकता है। अतः शान्त, अहिंसा-वादी, शाकाहारी भावसे मैंने कहा—

"बिरादर जार्ज, तुम्हारी बातें असंगत हैं। मैं तत्त्वप्रधान देश-का रहनेवाला हूँ और तुम्हें तत्त्वकी बात सुनाता हूँ। सो सुनो।

"तुमने दूसरोंसे भूमिका लिखानेकी निन्दा की है। पर मैं यदि स्वयं भूमिका लिखता हूँ तो उसमें भी कई विपत्तियाँ हैं। भूमिका लिखूँ तो भूमिहीन समझे ,जानेका भय है। न लिखूँ तो सस्ते जासूसी उपन्यास लिखने वाले उन घटिया लेखकोंकी सम-

कक्षता पानेकी सम्भावना है जिनकी किताबें पिस्तौल छूटनेकी धायँ-धायँसे शुरू होती हैं। भूमिकामें नम्रतावश यदि अपनी अल्पज्ञता और अनुभवहीनताकी बात कहूँ तो क्रूर आलोचक मेरी ही बातोंको मेरे ख़िलाफ़ उद्धृत करेंगे और यदि अपनी प्रशंसा करूँ तो जानते हो लोग क्या कहेंगे ?

"यदि लोग मेरे मुँहसे मेरी ही दम्भभरी प्रशंसा सुनकर मुझे दम्भी कहते तो मैं झेल ले जाता। पर अब लोग मुझे तुम्हारा नक़लची कहते हैं। शंवियन कहकर मेरी सम्पूर्णतः मौलिक आत्म-प्रशंसाको विदेशी और अमौलिक बना देते हैं। बिरादर जार्ज, तुमने अपने हाथों अपनी इतनी ढोल पीटी है कि आजके लेखक अपनी ढोल पीटनेके अधिकारसे हाथ धो बैठे हैं। वे प्रशंसा अपनी करते हैं पर वह तुम्हारी प्रशंसा मान ली जाती है।

"इसलिए मैंने तुम्हें मौक़ा देना चाहा था कि जहाँ तुमने अपनी इतनी भूमिकाएँ लिखी हैं और इतना आत्म-प्रचार किया वहीं तुम एक बार और सामने आकर अपनी ताक़त दिखा लो।

"मैं तुम्हें विनम्रताका प्रत्यक्ष पाठ पढ़ाना चाहता था। यदि तुम मेरी इस पुस्तकपर एक भूमिका लिख देते तो छः महीने बाद ही तुम्हें पता लग जाता कि तुम कहाँ हो। हमारी साहित्यिक शैली इतनी उन्नत हो चुकी है कि तुम्हारी भूमिका देखते ही पत्र-पत्रिकाओंके आलोचक तुमपर धावा बोल देते और पहले तुम्हारी भूमिकाकी लम्बाईपर छींटे कसते फिर तुम्हारी दकियानूसी व्यंग-प्रवृत्तिपर। बादमें तुम्हारे आदर्शोंकी पोल खोलनेका श्रेय पानेके लिए प्रत्येक आलोचक तुमपर कुछ-न-कुछ ज़रूर कह डालता।

इससे तुम घबराते और विनम्र बनते। वैसे, तुम्हारा प्रचार भी होता।

"मैं तुम्हें बताना चाहता हूँ कि हमारी साहित्यिक चेतना इतनी विकसित हो चुकी है कि आलोचक आत्मप्रचारवादियोंका ढूँढ़-ढूँढ़कर हनन कर रहे हैं और उन्हें कोई स्वयं आत्मप्रचार-वादी न बता दे इसलिए उन्होंने अपने छद्मनाम रख छोड़े हैं। ज़रा-सा सन्देह हो जानेभरसे वे आत्मप्रचारकोंको चारों ओरसे घेर लेते हैं।

"बिरादर जार्ज, अच्छा ही किया कि तुमने भूमिका लिखने-से इनकार कर दिया। नहीं तो इस देशकी सनातन विनम्रता तुम्हारी भूमिका-शैलीको हज़म करके फिर पूर्ववत् नीची निगाह लेकर बैठ जाती।

"मैं जानता हूँ। मुझे सचमुच ही बहुतसे भूमिका-लेखक मिल जायेंगे। तुम चाहे जो कुछ कहो, तुम पुराने पड़ गये हो। अमेरिकाकी अर्वाचीन व्यापार-पद्धतिमें विज्ञापन लेखन अपने आपमें एक महान् कला है। उसी कलाकी सेवा करनेवाले हमारे बहुतसे विद्वानोंको तुम एक साँसमें नहीं गिरा सकते। मैं उनमेंसे किसी एकको अपना लूँगा। उसकी लिखी हुई भूमिकाको पढ़ना और देखना कि उसने तुमपर कितने उदार विचार प्रकट किये हैं।

"उससे मैं तुम्हारी प्रशंसा लिखवाऊँगा ताकि तुम लज्जित हो सको।

चूँकि बात सपने ही की है इसलिए मुझे यहीं रुकना पड़ता है। शॉ मुझे पैनी निगाहसे देखकर मुसकराने लगे। और हालाँकि सपनेकी टेकनीकपर लिखी गई कहानियोंका नायक अन्तमें चारपाईसे नीचे गिर जाता है। या बीबी द्वारा जगा दिया जाता है, पर मेरे साथ ऐसा कुछ नहीं हुआ। मैं सोता रहा।

जहाँ तक शॉको समझानेका सवाल है, अपने बहुतसे साथियोंके साथ मैं अब भी सो रहा हूँ।

सुकवि सदानन्दके संस्मरण

कवि न होहुँ नहिं चतुर प्रबीना।
सकल कला सब विद्या हीना॥

—गोस्वामी तुलसीदास

(तबहुँ कबिन कर आसन छीना)

—सदानन्द

हौं पण्डित केर पछिलगा।

—जायसी

(यहि विधि सकल जगतका ठगा)

—सदानन्द

विफल जीवन व्यर्थ बहा बहा,
सरस दो पद भी न हुए अहा:
सफल है कवित्ते तव भूमि भी:
पर यहाँ श्रम भी सुख-सा रहा:

—मैथिलीशरण गुप्त

(सुकवि तो मुझको सबने कहा)

—सदानन्द

संस्मरणकी परिपाटी पुरातन है। बाणभट्ट जैसे कविने हर्ष-चरितके सहारे आत्मचरित लिखा है। अर्वाचीन परिपाटी और भी अलंकारमय है। सुलेखक, विमल बी० ए० पास, बाबू श्याम-सुन्दरदास तक ने अपनी जीवनी अपने हाथों लिखी है। बाणभट्टने हर्षचरितमें अपने आवारा होनेसे उच्चकोटिके कवि होने तकका

वर्णन किया है। अर्वाचीन परिपाटीमें कवि होनेसे आवारा होने तकका वर्णन हो तो वह आदर्श जीवनी हो जायगी। अपने विषय-में वही करता हूँ।

अर्वाचीन शैलीमें शरीर-सज्जाके वर्णनसे ही संस्मरण प्रारम्भ करनेका चलन है।

यथा :

शरीरसे दुर्बल, देखनेमें दरिद्र, एक आँख चमकती हुई, एक आँख मुँदी हुई, मूँछें छोटी-छोटी और अकिंचन—ऐसे हैं बाबू…।

उसी प्रकार अपनी अनेक स्थितियोंके छः चित्र पाठकोंकी भेंट करता हूँ :

लँगोटी लगाये हुए, तनपर भस्म मले हुए, रूखे बाल, फला-हारी (अर्थात् आमका रस हाथमें और जामुनका रस मुँहपर पोते हुए) कृष्णानुरागी (अर्थात् काले-कलूटे), गोरक्षक (अर्थात् गाय-बैलोंकी चरवाही करते हुए), शुकदेव समान (अर्थात् दस वर्षकी आयुमें ही जंगलमें घूमने वाले), परम प्राकृत रूप—यह मेरी बाल्यावस्था थी।

लुंगी बाँधे हुए, भुजाओंमें काला ताबीज़ और गलेमें काला डोरा डाले, शरीरपर कड़ुए तेलकी मालिश किये, भंग पिये, भंग पीनेवालोंसे घिरे, भंग घोटते हुए, कड़कती आवाज़में कवित्त-सवैयोंका पारायण करते हुए, गुरु-सेवामें तल्लीन—यह किशोरा-वस्था थी।

बढ़िया ताबदार, पेंचदार मूँछोंसे शोभित मुखमण्डल, रंगीन साफ़ा, जोधपुरी कोट, चूड़ीदार पायजामा, ताम्बूल-चर्वण-सिद्ध

कण्ठसे नायिकासेवी सवैयोंका गान, छन्दको अयाचित रूपसे दो बार सुनानेका नियम—यह पूर्व-युवावस्था थी।

गांधी-टोपी, कुर्ता, धोती, चप्पल, छड़ी, झोला। जो सच है उसे सच बताते हुए।, 'सत्यसे लाभ', 'पुरुषार्थकी महिमा', 'आशा और निराशा' आदि विषयोंपर कविता लिखते हुए—यह मेरी उत्तर-युवावस्था थी।

फिर, समयकी शिलापर मधुर चित्र बनाते हुए, नीरभरी दुःखकी बदरी बरसाते, मनको मधुर-मधुर तपनेका उपदेश देते, हृत्तन्त्रीके तारोंसे क्षितिजके उस पारको भी झंकारकर, क्षीणकाय, क्षीणकटि, जटिली, कुंचित-केशी, मधुवेशी रूपमें काव्य सर्जना करते हुए—यह प्रौढ़ावस्था थी।

और अब वेशसे काव्य निर्देश होना सम्भव नहीं। प्रगति, प्रयोग, नव-काव्य (नई कविता)—सब गड़बड़ हो गया है। फिर भी :

रूखे-बाल, टूटे-चप्पल, फटा-कुरता, विना स्याहीकी फाउण्टेन-पेन, मोटे फ्रेमका चश्मा।

अथवा, बिलकुल नया-सूट, दोषहीन अंग्रेज़ी भाषा, चमकते-जूते, वकीलों-सी तार्किकता, डाक्टरोंकी-सी सहानुभूति, बीमा एजेण्टोंकी-सी चतुरता, बातचीतमें कथा-वाचकोंकी-सी असम्बद्धता—यह सब वृद्धावस्थामें झेल रहा हूँ।

मैं सदानन्द था, सदानन्द हूँ। इसका रहस्य नये कवियोंके लाभार्थ बता रहा हूँ।

प्रारम्भसे गुरुदेवने सवैया-घनाक्षरीका सुख दिया। तब कवित्त

लिखनेके विषय खोजने न पड़ते थे। वे बोले "मुग्धापर लिखो। सवैया छन्द हो। सिंहावलोकनका सत्कार हो। छेकानुप्रासकी छटा हो। रूपकका रमण और उत्प्रेक्षाका उल्लेख हो।" दिनभर भगणके लघु-गुरुका नक्शा बनाकर क्रॉसवर्ड पहेली-सी भरते रहे। शामको गुरुदेवने वह नक्शा फाड़कर फेंक दिया और एक सवैया लिख दिया। मेरी काव्य-साधना सफल हुई।

समस्या-पूर्तिमें और भी सुख था। किसीने समस्या दी, मैंने उसकी पूर्ति दी। "पिपीलिका चुम्बत इन्दुकी बिम्बैं" मिल गई तो 'किम्बैं' से लेकर 'झिम्बैं' तक खींच ले गये। इस प्रकार चार तुक निकालकर पिपीलिकाको इन्दु तक ले जानेका उपक्रम करने लगे। साधना कठिन थी पर पिपीलिकाकी साधना सर्वविदित ही है। वह असली इन्दु तक न जा सके तो नायिकाका मुख भी तो इन्दु ही है। नायिकाके सो जानेपर पिपीलिकाको वहीं पहुँचा दिया और इन्दुकी बिम्बैं दिखा दी। आगे पिपीलिकाकी गति पिपीलिका जाने और नायिकाकी जाने नायिका।

एक रेलवेके बाबू थे। रायबरेलीके रहनेवाले, जातिके दुबे। उन्होंने नौकरीसे इस्तीफ़ा दे दिया उसके कविताके स्टेशनपर आकर नायिका-भेद, सवैया-घनाक्षरी आदिकी लाइनपर लाल झंडी लेकर बैठ गये। खड़ी बोलीका लाइन-क्लियर देकर सीटी बजाने लगे। प्रयागमें सीटी बजायी तो चिरगाँव तक उसकी गूँज गई। मैंने गुरुदेवसे कहा "मैं भी इस नयी लाइनपर जाऊँगा।"

वे बोले, "तरवारिकी धारपर धावनो है।"

पर मैंने लाइन बदल दी। यहाँ और भी सुख था। जैसे कोई

आकर कहे, "इस डिब्बेकी चेन फ़िट कर दो।" वैसे ही एक पत्रने आकर कहा, "वर्षा-अंकके लिए 'हरी घासपर' कविता लिखो। 'मानो' का प्रयोग हर तीसरे चरणमें हो। इसे उत्प्रेक्षा समझो। द्रुतविलम्बित छंद हो।"

यह काम बड़े आरामसे चल रहा था कि एक दिन कहीं पढ़ा :

"विजन निशा निरवधि नभ शीतल,
तुहिन, कुसुम, विभ्रम, साकार"

न भाषा समझमें आयी, न भाव। लगा कि मैं जिस लाइनपर जा रहा था वह छोटी लाइन है। उसीके पाससे बड़ी लाइनपर एक गाड़ी बिना दुबे जीसे लाइन-क्लियर माँगे निकल गयी है।

मुझ सदानन्दको क्या चिन्ता ? कवि कहानेकी चाट लगी थी। (कवियशःप्रार्थी।) सीधे प्रयाग गया। एक वयकिशोर, कोमलतनु, परम सुखद कवि मिले। गुरुदेवका पत्र आया कि रहस्यवादका जाल जटिल है। मैंने इन गुरुकी जटाओंका उल्लेख करके लिखा कि कविताके उत्स कहाँसे फूटे हैं।

अब कालिदास-ग्रन्थावली लेकर शब्द खोजने बैठे। आवर्जित, संचारिणी, पल्लविनी, श्लथ, विश्लथ, नीहार—जो भी शब्द स्त्रैण जान पड़ा, उसे रट लिया। उपसर्गका प्रयोग सीखा। शमका उपशम, क्रान्तिका संक्रान्ति, हारका प्रहार, आहार, संहार, विहार सब रटकर जो कविता लिखी तो पूरी लाइनपर डाकगाड़ीकी गमक गूँजने लगी।

एक दिन समाचार सुना कि प्रगतिवादके दफ़्तरमें भर्तीका काम जारी है।

लड़ाईके दिन थे। देशके हज़ारों नौनिहाल खन्दकोंमें पड़े सड़ रहे थे। मैंने भी दफ़्तरमें जाकर अपना कार्ड बनवाया। हवलदारने नसीहत दी, "ये ज़नाना क़िसमकी कविता नहीं चलेगी। जोश-ख़रोशकी बात लिखनी होगी। मज़दूर भूखा है, किसान नंगा है, पूंजीपति पेटू है। तुम कुछ जानता भी है?"

हाथ जोड़कर मैंने कहा: "सोई जानै जेहि देहु जनाई।"

उस दफ़्तरमें बारह साल काम करते-करते एक दिन जान पड़ा कि मज़दूरों और किसानोंकी समस्या हल हो गयी क्योंकि उस दिन ये शब्द सुन पड़े:

"सुनो, कैरा सुनो,
क्या मेरी आवाज़······!"

उसी दिन मैंने एक विस्तृत पत्रमें अपने गुरुदेवको पूरी बात स्पष्ट रूपसे लिखी,

"सुनो, गुरुदेव, सुनो,
क्या मेरी आवाज़ तुम तक पहुँचती है?"

"मैं अब प्रयोग करने लगा हूँ। आज मैंने एक कवितामें अस्पतालका, प्रयोग किया है। डिसइन्फेक्टेंट, ऐंटीबाइटिक्स, ऐनीस्थीशिया, क्लोरोमाइसिटीन आदि शब्द कल सीखे थे। इनका इस्तेमाल इस एक कवितामें आज दिखाया है। अब एक कविता मुझे रातके झिलमिले तारोंपर लिखनी है। उसमें इन्जीनियरीका प्रयोग करना पड़ेगा। गुरुदेव, बचपनमें सड़क कूटनेके कारण, दरेसी, गैंग आदि शब्द तो मुझे आते हैं पर कोई लम्बा शब्द याद नहीं

है। सुनते हैं ख्यूववेल बनानेकी मशीनमें कई पुर्जोंके अद्भुत नाम हैं। आप किसी मिस्त्रीसे पूछकर लिख भेजनेकी कृपा करें।

"साथ ही साथ, गुरुदेव, अब नयी-कविताका नाम भी सुननेमें आने लगा है। पर इस मोर्चेपर भाग्य, 'मारेसि मोंहि कुठाँउँ।' नयी कविता लिखनेके लिए, सुनते हैं, पढ़ना तो बहुत पड़ता है और फिर सब पढ़कर लिखना ऐसा पड़ता है कि कविके पढ़े-लिखे होनेका आभास तक न मिले। सो, गुरुदेव, पढ़ाईकी बात सुनते ही, "सीदन्ति मम गात्राणि, वेपथुश्चोपजायते।" मुँह सूख रहा है, राह नहीं दीख पड़ती। कुछ बताइए कि अब क्या करें और क्या लिखें ?

"आप कहते हैं कि बार-बार अपनेको बदलकर मैंने बुरा किया। गुरुदेव, इसी कारण मुझे आलोचक समन्वयवादी कहते हैं। आपने 'अवसरवादी' शब्दका प्रयोग अशुद्ध रूपसे किया है। राज-नीतिका यह शब्द साहित्यमें प्रयुक्त नहीं हो सकता। आपने ही सिखाया था, 'काव्यं यशसे'। सो जहाँ जैसा यश मिला वहाँ वैसी कविता की। 'अर्थकृते', अतः जहाँ दो पैसेका डौल लगा, वहाँ जाकर काव्य लिखा। यह शास्त्रोक्त कर्म था। इसमें कौन-सा कुकर्म है, गुरुदेव ?

"और सच तो यह है, कि मेरी कविता बदली, पर मैं नहीं बदला। "जग बदलेगा, किन्तु न जीवन।" सदानन्द था। सदानन्द रहा। सवैया लिखकर भी 'सदेश' नहीं बना। 'सरस्वती' में छन्द छपाकर भी सदानन्दशरण नहीं कहलाया। सरस्वती प्रेस तक

जाकर भी मैं कामरेड सिद्ध नहीं हुआ। अब नयी कविता लिखूँगा। पर सदानन्दायन नहीं बनूँगा। यश बढ़ता रहे, अर्थ बढ़ता रहे, राजसम्मान बढ़ता रहे, पर नाम वहींका वहीं रहेगा। इसीमें आनन्द है। सदानन्द हूँ। सदानन्द रहूँगा।"

यथार्थ

•

स्वर्णग्राम और वर्षा

कलकी बात है। रेडियोसे 'रिमझिम परत फुहार' नामक संगीत रूपक हो रहा था। कहानी ऐसे गढ़ी गई थीः—

एक कवि था। उसकी एक कल्पना थी। वाजिब था कि वे संगीतमें बात-चीत करते। उतना न कर सके तो दोनोंने पद्यमें बात-चीत की। जब पानी बरसा तो कविको शहरमें बड़ी निराशा हुई। क्योंकि वहाँ ईंट, चूने व सीमेण्टके मकान थे। सड़कें थीं। नालियाँ थीं। प्रकृतिकी कोई भी क़द्र नहीं थी। "दादुर मोर, पपीहा बोले" वाला डौल न था। अब कवि क्या करे? कविता निकलती है केवल दादुर, मोर, पपीहाकी लाइनमें खड़े होनेपर, अर्थात्, उनसे तादात्म्य स्थापित करके। इसलिए कविने कल्पनाको डाँटा कि वह उसे शहरमें क्यों घुमा रही है। कल्पना कविके 'राज़' को जानती थी।

कल्पना कविको गाँव ले गई।

अब आप आँख मूँदकर रीतिकालीन साहित्यको कपड़छान करके उसकी गोलियाँ खा लीजिए। १९५५* ने आपको जो कुछ बताया है उसे भूल जाइए। श्री मैथिलीशरण गुप्तकी 'अहा ग्राम्य-जीवन भी क्या है' की चौपाइयाँ हनुमानचालीसा जैसी रट डालिए। पन्तजीकी 'ऊँची अरहरमें लुका छिपी' वाला खेल सीख लीजिए और कविकी आँखोंमें बैठ जाइए।

---

* इस लेखका लेखन-काल।

किसी खेतके एक कोनेमें बिरहिन खड़ी रो रही है। मतलब यह है कि गा रही है। बिरहिन वर्षाऋतुमें बहुतायतसे पाई जाती हैं। वे गाँवों ही में रहती हैं। शहरोंमें इसलिए नहीं रहतीं कि वहाँपर 'डगर जोहने' की गुंजाइश नहीं। वहाँ डगर नहीं, सड़कें होती हैं। बिरहाकी आग लगानेके लिए पपिहराकी बोली सुनना लाज़मी है। इसलिए गाँवमें बिना रहे काम नहीं चलता।' 'झंझा' भी गाँवोंमें ज़रा ज़ोरसे सनसनाती है। इसलिए बिरहिन कविको गाँवमें मिली, शहरमें नहीं।

कविने वहाँ झूला भी देखा! 'मदमाती युवतियाँ खिलखिलाकर हँस रही थीं।' शहरमें एक तो युवती नहीं होती हैं, अगर होतीं तो कविको गाँव न जाना पड़ता। होतीं भी होंगी, तो मदमाती नहीं हो सकतीं। अगर जैसे-तैसे मदमाती भी हो गईं तो खिलखिलाकर हँस नहीं सकतीं।

तो कविने खिलखिलाती युवतियाँ देखीं। अब जब ऐसी युवतियाँ हों तो उनमें एक झेंपनेवाली, कम हँसनेवाली युवती भी होनी चाहिए। सब युवतियाँ सखियाँ हैं। यह झेंपू लड़की हीरोइन है। यह सब नया नहीं है। अल्फ्रेड कम्पनीके नाटकोंमें 'रम्भाका सखियोंके साथ आना' से लेकर आज तकके बम्बइया फिल्मोंमें एक्स्ट्राज़के झुंड देखनेवाले मेरी बात समझ जायँगे।

कविने उनसे बारहमासे और मौसमी चीज़ें सुनीं।

खेतोंमें किसानोंके जत्थे 'मेघराज, मेघराज, मेघराज' कहकर गा रहे थे। सिनेमामें देखा होगा कि तूफ़ान आनेके पहले 'माँझी' लोग (माँझी शब्द टेकनिकल है) या, किसी दुर्घटना होनेके

पहले कुछ आवारे, एक ख़ास आवाज़में बड़ी गम्भीरताके साथ गाते हैं। किसान भी कुछ इसी प्रकार गा रहे थे। सिनेमामें ऐसे कोरसोंमें एक स्वरपर दूसरा स्वर चढ़ा रहता है। दो एक गानेवाले सिर्फ़ 'होशियार ! होशियार !' 'जाऽऽ तूऽऽऽऽ ! जाऽऽ तूऽऽऽ' दोहराते रहते हैं। एक गानेवाला डरानेवाली आवाज़में सिर्फ़ आऽऽऽ का अलाप खींचता है। सुननेवालेको सहमा देना ही इन कोरसोंका उद्देश्य माना गया है। इस भावनाको और बढ़ानेके लिए गीतकी टेकके तरीकेसे 'मँडोला गँडोला डोला' 'चीम पाम, चीम पाम' जैसे मन्त्र बीचमें गाये जाते हैं। ऐसे ही मन्त्रके साथ आरकेस्ट्रा समाप्त हो तो कोरस सफल माना जाता है।

जो किसान खेतमें गा रहे थे, वे गा इसी टेकनीकसे रहे थे। सिर्फ़ मन्त्र नहीं फूँकते थे। कविने समझ लिया कि किसान परम प्रसन्न है। यानी, लड़के हँस-खेल रहे थे। नदी-नाले रससे भरे बह रहे थे। हरियाली छिटकी थी। पवन डोल रहा था। रिम-झिम फुहार पड़ रही थी।

यह भी न भूलिए कि इसी बीच दादुर, मोर, पपीहा, बिर-हिन आदि अपना-अपना पुश्तैनी काम कर रहे थे।

तब कविको विश्वास हो गया कि उसकी कल्पना उसे ठीक जगह ले आई है।

कुछ बात-चीतके बाद संगीत-रूपक नहीं समाप्त होता है।

अब कल्पनाको फिर बुलाइए। लीजिए यह आ गई।

इसकी मददसे कविको इसी गाँवमें एक किसानके घरमें रख दीजिए। उसके हाथमें वही अठारहवीं सदीवाली सरकण्डेकी

क़लम और काली स्याहीकी दावात पकड़ा दीजिए। अब उसे चौबीस घण्टे तक यही सरकण्डेकी क़लम पकड़े हुए गाँवकी गलियोंमें घूमने दीजिए।

रात हो गई है। मोर, पपीहा बोल रहे हैं। पर वे दूर हैं। दादुर नज़दीक ही बोल रहे हैं। 'वेद पढ़ें जनु बटु समुदाई।' पर एक दादुरका वेदपाठ ऐसे उदात्त-अनुदात्तमें उलझ जाता है कि कवि चौंक उठता है।

एक साँपने वेदपाठी दादुरको ग्रस लिया है। कविको उपमा नहीं ढूँढ़े मिलती। वह चीत्कारकर उठता है। यह चीत्कार विरह-बिथावाले चीत्कारसे भिन्न है।

साँप मारा गया।

इसके बाद 'झिल्ली झनकारें।' साथ ही, 'मच्छर रोर करें।' ये मच्छर कविकी सोई हुई कल्पनाको जगानेके लिए विशेष उत्सुक हैं। उसके कानपर बार-बार बैठकर वर्षा-मंगल गा रहे हैं। उसके कोमल कपोलोंको अपने कोमलतर स्वप्निल पंखोंसे छू रहे हैं। उसके सम्पूर्ण अस्तित्वको आत्मसात् किये ले रहे हैं। कविकी कल्पना फिर भी हँस नहीं पाती। उसी दुःखमें वह कभी अपने कान खींचता है, कभी अपने मुँहपर चपतें मारता है, कभी पैरोंमें चुटकी काटता है। केवल ज़हर पीकर आत्महत्या नहीं करता। (जैसा कि कभी-कभी बिरहिन करती है।)

ख़ुदाको जब देना होता है तो पानीकी धार तक छप्पर फाड़कर देता है। कवि चारपाईसे उठना चाहता है। उठता है। जूतोंमें पैर डालते ही अँगूठेके पास कुछ 'मृदुल-मृदुल, कोमल-कोमल'

अनुभव होता है। एक जूतेमें चिरपरिचित दादुर विश्राम कर रहा है। दूसरेमें डंक उठाये एक बिच्छू अपना कर्तव्य निभानेको आकुल बैठा है। (यहाँ यह बात भी तबीयतमें उठ सकती है कि इस डंकका प्रयोग कविके अँगूठेपर करा दिया जाय। पर यह वर्णन कुछ देर तक और चलाना है।)

आप यहीं घबरा गये ? 'स्वर्णिम उषा' देखना चाहते हैं ? अच्छी बात है, झंझा-झकोर, गर्जनसे लेकर मच्छर-मक्खी तक छोड़ दीजिए, सिर्फ़ एक प्राणीसे परिचय कर लीजिए।

वर्षासे दो प्राणी विशेष प्रसन्न होते हैं, कवि और चोर। चोरके लिए आदर्श अवसर है। गाँव है, थाना दूर है। पुलिस पहरेका डर नहीं है। आने-जानेके रास्ते बंद हैं। दीवालें आधी ढह गई हैं। जो समूची हैं, वे बरसातकी नमीमें सेंधका स्वागत करनेको पिछवाड़ेकी ओर झुक गई हैं। झंझाकी मारसे थककर रातके तीन बजे किसान ख़र्राटे ले रहा है। गाते-गाते बिरहिनकी औक़ात जवाब दे गई है। कवि कल्पना, निद्रा और मदहोशीके तितालेपर नाचता हुआ मिट्टीके संसारसे दूर घूम रहा है, यानी 'बिचर' रहा है।

अब न चूक चौहान।

भूल जाइए, "यहाँ उचक्के चोर नहीं हैं।"

स्वर्णिम उषा फूटी। (उषा हमेशा 'फूटती' है, आती नहीं है :) किसान "मेघराज, मेघराज" भूलकर थानेपर जा रहा है। चोरीकी रिपोर्ट लिखानी है। कविका सौभाग्य है कि किसानने

उसे ही चोरके ख़ानेमें नहीं लिखाया। वह अपने पड़ोसीको लिखायेगा। उससे पुश्तैनी दुश्मनी है।

किसानको इस बेईमानीका पता तब चलेगा जब उससे अदालतमें पूछा जायगा कि उसके घरमें उसकी बाईस सालकी लड़की है और सफ़ाईमें कहा जायगा कि रामजियावन चोरी करने नहीं गया था बल्कि इस लड़कीके बुलानेसे ही किसानके घरमें आया था। फ़ैसला भी यही होगा। रामजियावन छूट जायगा। किसानकी सात पीढ़ियाँ कलंकित हो जायँगी।

बारिश शुरू हुई।

दिनभर खेतोंकी मेंड़ बाँधनेके सिलसिलेमें दस फौजदारियाँ हुईं। (मरे फौजदारीकी नानी) एक खेतका पानी दूसरे खेतसे निकालनेके सिलसिलेमें पन्द्रह और एकके परनालेका पानी दूसरेकी छतसे निकलनेपर बीस और फौजदारियाँ हुईं। खेत जोतनेके दिन आये। अतः मज़बूत लोगोंने कमज़ोर लोगोंके खेत ज़बरदस्ती छीनने शुरू किये। मुक़दमेबाज़ी प्रारम्भ हुई। (दीवाना करती दीवानी।)

कवि डेरीके मक्खनका अभ्यासी है। यहाँ मक्खन नहीं मिलता। दूध इन्हीं डेरियोंमें जाता है। कविका पेट गाँवका अन्न खाकर जवाब दे गया।

चार कोसपर धन्वन्तरि रहते हैं। वे पहले कम्पाउण्डर थे। दवाओंकी चोरीके जुर्ममें निकाल दिये गये थे। लेकिन उन्हें भी बुलाना कठिन है।

और, कपड़े-लत्ते, खाने-पीने और दवा-दारूकी समस्या!

कवि यह सब नहीं सोचता। यह काम राजनीति और अर्थ-शास्त्रसे मतलब रखता है।

अब कविकी कल्पना मूर्च्छित हो गई। उसे होशमें लानेके लिए लैला-मजनू, शीरी-फरहादकी कहानियाँ पढ़नी होंगी। ताज-महलके चक्कर लगाने पड़ेंगे। बिरहिनके आँसुओंसे नहलाना पड़ेगा।

आया था कल्पनाके यानपर। लौटा पैदल।

रास्तेमें रिमझिम फुहारके मारे नाकमें दम था। कीचड़ व पानीके बीचमें चलना कुम्भीपाक जैसा लग रहा था। कविने शुद्ध बंगाली ढंगसे पहनी हुई धोती ऊपर चढ़ाई, फिर चलना शुरू किया।

अँधेरा हो गया। तब कविको लगा कि कोई भी उसकी गर-दन दबाकर उसकी पर्स छीन सकता है। उसे 'मुद्दई' बना सकता है। कोर्टमें उससे उसके ख़ानदानकी महिलाओंकी अवस्था और गुण पुछवा सकता है।

तब सत्यकादर्शन हुआ।

एक दादुर यानी मेढक, एक गढ़ेमें बैठा हुआ टर्र-टर्र कर रहा था। कीचड़में सना, परमहंस जैसा, वर्षाके उत्पातसे अनजान। वह और उसके पुरखे सनातनसे यही बोल बोलते आये थे। कवि-ने समझा कि वर्षापर जो बोल वाल्मीकिके कालसे बोले गये हैं, उन्हींको रटते-रटते कविने अपने आपको कहाँ पहुँचा दिया है।

आदर्श

दो पुराने आदमी

कुछ दिन हुए, रामानन्दजी और राकेशजी अपने-अपने पेशेसे रिटायर होकर सिविल लाइंसमें बस गये थे। अपने यहाँका चलन है कि रिटायर होनेके बाद और इस लोकसे ट्रांसफर होनेके पहले बहुतसे लोग सिविल लाइंसमें बँगले बनवा लेते हैं। इन्होंने भी वहाँ अपने-अपने बँगले बनवा लिये।

रामानन्दजी किसी समयमें चोरी किया करते थे। वे पुराने स्कूलके चोर थे, इस कारण उनका विश्वास तांत्रिक क्रियाओंमें भी था। बादमें चोरी सिखलानेके लिए उन्होंने एक नाइट स्कूल भी खोला। कुछ समय बीतनेपर चोरीके मालके क्रय-विक्रयकी उन्होंने एक दूकान कर ली। इस सबसे अब वे रिटायर हो चुके थे और अपनेको रिटायर कहा करते थे।

राकेशजी रिटायर तो हो चुके थे, पर चूँकि वे कवि थे इस कारण वे अपनेको रिटायर माननेको तैयार न थे। कभी उन्होंने एम० ए० पास किया था; और फिर वे एक कॉलेजमें प्रोफेसर हो गये थे। उस पेशेमें तो वे ज़्यादा नहीं चल पाये पर कविकी हैसियतसे उन्हें ऊँचा स्थान मिल गया था। अर्थात् अबतक उनके पास उनकी अपनी कविताएँ थीं, अपने प्रकाशक थे, अपने ही आलोचक थे, अपने ही प्रशंसक और पुरस्कारदाता थे। इधर कुछ आलोचक उन्हें कविताके क्षेत्रमें भी रिटायर कहने लगे थे।

दोनों पड़ोसी थे। दोनोंको एक दूसरेके पुराने व्यवसायका ज्ञान था। उनमें मित्रता हो गई। दोनों प्रायः हर बातमें एकमत रहते थे। दोनों यही समझते थे कि इस युगमें योग्यता और कला-का ह्रास हो रहा है और आजकी पीढ़ी बिलकुल जाहिल, निरर्थक और अयोग्य है।

इसीलिए एक दिन लॉनमें टहलते-टहलते राकेशजीने कहा, "आजकी पढ़ाईमें रक्खा ही क्या है ? मैं आठवें दर्जेमें हिन्दी कविताका अर्थ अंग्रेज़ीमें लिखता था। अब बी० ए० में अंग्रेज़ी कविताका अर्थ हिन्दीमें लिखाया जाता है।

रामानन्दजी बोले—"आप ठीक कहते हैं। हमारे ज़मानेमें कुछ लोग फ़र्शपर डंडा ठोंककर ज़मीनमें गड़े हुए धनका हाल जान लेते थे। आजके दिन सामने कपड़ेसे ढँकी तिजोरी रक्खी रहती है और लोग उसे मेज़ समझकर विना छुए ही निकल जाते हैं।"

राकेशजीने कहा, "और जमकर साधना करनेका तो समय ही चला गया है। आजकल···।"

बात काटकर रामानन्दजी बोले, "साधना अब कौन कर सकता है ? हम लोगोंने अमावसकी रातमें मसान जगाया था। मुर्देकी खोपड़ीमें चावल पकाकर उसे जिस घरमें डाल देते वहाँ का माल······।"

राकेशजीने जल्दीमें कहा, "नहीं नहीं, वैसी साधनासे मेरा मतलब नहीं है। मैं साहित्य-साधनाकी बात कर रहा हूँ। आजकल लोग व्याकरण, पिंगल, काव्यशास्त्रका नाम तक नहीं जानते और नई-नई बातोंके आविष्कारक बन जाते हैं। कोई

दो-दो पंक्तियोंको लिए मुक्तक लिख रहा है, कोई अतुकान्त चला रहा है, कोई क्रियाओंके नये-नये प्रयोग भिड़ा रहा है : और पूछ बैठिए कि अकर्मक क्रिया और सकर्मक क्रियामें क्या भेद है तो अंग्रेज़ी बोलने लगेंगे।"

एक गहरी साँस खींचकर रामानन्दजी बोले, "आप सच कहते हैं, अपने यहाँ भी यही दशा है। दीवालकी कौन कहे, काग़ज़पर क़ायदेकी सेंध नहीं लगा सकते और बात करेंगे सिटकनी खोलनेकी, रोशनदान तोड़नेकी, जेब काटनेकी। नई-नई तरकीबोंकी डींग हाँकेंगे। और पुरानी···।"

राकेशजी अपनी धुनमें कहते गये, "और विनम्रता तो रही ही नहीं। कुछ सिखाओ तो सीखेंगे नहीं। कुछ बताओ तो बिना समझे-बूझे अकड़ने लगेंगे। आजके साहित्यिक, साहित्यिक नहीं—लठैत हैं, लठैत।"

रामानन्दजी समर्थन करते हुए बोले—"साहित्यिकोंके क्या पूछने राकेशजी। यहाँ तो अबके चोर, चोर नहीं रहे। वे तो डकैत हैं, डकैत। अपना पुराना तरीक़ा तो यह था कि घरमें घुसे और बच्चेने खाँस दिया तो विनम्रतापूर्वक बाहर निकल आये। पर आजकलके ये लोग किसीको जागता हुआ पा जायँ तो···" सहमकर उन्होंने वाक्य पूरा किया, "बाप रे बाप···"

अब राकेशजी उत्साहित हो गये और बोले, "ये सब जाहिल हैं, निरर्थक हैं। पहले तो लिखते-लिखते हाथ ऐसा मँज जाता था कि पाठक बिना पढ़े ही दूरसे समझ जाते थे कि अमुक कविकी कविता है। उसपर उनका व्यक्तित्व झलकता था···।"

रामानन्दजीने धीरेसे कहा, "यही तो। सेंधकी शकल देख-कर लोग कह देते थे कि यह फलाँने लगाई है। अब तो सिट-कनी खुली पड़ी है..."

उपमा राकेशजीको पसन्द आ गई। बोले, "हाँ, आजकल यही तो है ही। साहित्यके दरवाज़ेकी सिटकनी अन्दरसे खोल-खोलकर न जाने कितने लोग घुस आये हैं।"

विना समझे-हुए रामानन्दजी ने कहा, "जी हाँ, पहले तो सेंधका ही चलन था।"

राकेशजीने जल्दीसे कहा, "जी, आप मेरा मतलब नहीं समझे। मैं कह रहा था कि...।"

अकस्मात् उन्होंने चौंककर कुरतेकी जेब पकड़ ली। रामानन्द-जीका हाथ उनकी मुट्ठीमें आ गया। नाराज़गीसे राकेशजी बोले—"यह क्या? आप मेरी जेब काट रहे थे।"

रामानन्दजीने विनम्रतासे हाथ छुड़ाकर कहा, "यही समझ लीजिए। बात यह है कि...बात यह है कि ये नौसिखिए कुछ काम तो बड़ी सफाईसे कर दिखाते हैं। मैं आपसमें वही देख रहा था कि यह जेबवाला काम मुझसे भी चल पाता या नहीं।"

राकेशजी नर्म पड़े। बोले, "देख लिया आपने।"

विना उत्साहके, रामानन्दजी साँस खींचकर बोले, "देख लिया राकेशजी, यह सब अपने बस-बूतेकी बात नहीं। जो हमने कर लिया वह आज वाले नहीं कर पाते हैं। पर इनके भी कुछ ऐसे खेल हैं जो हम नहीं खेल पाते। अपना-अपना ज़माना है।" ..

सहसा राकेशजी बिगड़कर बोले, "यह सब आपहीके यहाँ चलता होगा। अपने यहाँ तो अब भी जो कहिए, करके दिखा दूँ। रामानन्दजी, यह तो करनेकी विद्या है। चाहे कवित्त हो, चाहे कविता हो, या हो नई-कविता। लिखूँगा तो आजकल-वालोंसे अच्छा ही लिखूँगा।"

रामानन्दजी राकेशजीकी ओर देखते रहे। उनमें कभी मतभेद नहीं हुआ था। पहली बार उन्हें लगा कि कुछ ऐसी भी बातें हैं जहाँ उनकी राय हमेशा एक नहीं होगी।

कथाएँ

•

पहली चूक

उत्तम खेती मध्यम बान,
अधम चाकरी भीख निदान ।

यह कहावत पहले मैं कई बार सुन चुका था । अब हुआ यह कि बी० ए० पास करनेके बाद मुझे अधम चाकरी मिली ही नहीं । इसलिए उसे भीख निदान समझकर मैंने खेतीके उत्तम व्यवसायमें हाथ लगाना चाहा और अपने गाँव चला आया ।

मेरे चचाने मुझे समझाया कि खेतीका काम है तो बड़ा उत्तम, पर फ़ारसी पढ़कर जिस प्रकार तेल नहीं बेचा जाता वैसे ही अंग्रेज़ी पढ़कर खेत नहीं जोता जा सकता । इसपर मैंने उन्हें बताया कि यह सब क़ुदरतका खेल है क्योंकि फ़ारसमें तेल बेचनेवाले संस्कृत नहीं पढ़ते, फ़ारसी ही पढ़ते होंगे और इंग्लैंडके किसान सिर्फ़ अंग्रेज़ी ही नहीं बोलते, खेत भी जोतते हैं ।

चचा बोले, "बेटा, यह खेतीका पेशा तुमसे नहीं चलेगा । यह तो हम जैसे जाहिलोंके लिए है । इसमें तो दिन-रात पानी और पसीना, मिट्टी और गोबरसे खेलना पड़ता है ।"

इसपर मैंने जवाब दिया कि यह शरीर ही मिट्टीका बना हुआ है और गोबर तो परम पवित्र वस्तु है । मिट्टीका स्थान यदि पञ्चभूतमें है तो गोबरका स्थान पञ्चगव्यमें है ।

मेरे मुँहसे पवित्रताकी बात सुनते ही चचा दंग रह गये । आस-पास बैठे हुए लोगोंमें 'धन्य है, धन्य है' का नारा लग

गया। तब मैंने फिर कहना शुरू किया, "और चचा, यह खेती जाहिलोंका पेशा नहीं है। बड़ों-बड़ोंने इसकी प्रशंसा की है। कार्लाइलने इसपर लेख लिखे हैं, टॉल्स्टाय तो स्वयं किसान ही हो गया था, वाल्टेयर ख़ुद बाग़बानी करता था, ग्लैड्स्टन लकड़ी चीरता था। अपने देशमें भी गौतम जैसे ऋषि गेहूँ बोते थे। वैसे तो, कंद-मूल-फल खानेके कारण उनकी दिलचस्पी हॉर्टिकल्चर-में थी और वे ज़्यादातर फल और शकरकंद ही पैदा करते थे। इसलिए खेतीको उत्तम मानना ही चाहिए। मैं कलसे खेती करूँगा। मेरा यही फ़ैसला है।"

मेरे चचा मेरी बातसे प्रभावित तो हुए पर बोले, "बेटा, खेती तो करोगे पर इतना समझ लो कि खेतोंके आस-पास न तो कॉफ़ी हाउस होते हैं न क्लब, सिनेमा-घरोंकी गद्देदार कुर्सियोंकी जगह अरहरकी ठूँठियोंपर घूमना-फिरना होता है।"

यहाँ मैं आपको बता दूँ कि मुझे सिनेमाका बड़ा शौक़ है। वह इसलिए कि सिनेमा खेतीकी उन्नतिका एक अच्छा साधन है। सिनेमा-द्वारा खेतीका बड़ा प्रचार हुआ है। बड़े-बड़े हीरो खेत जोतते जाते हैं और गाते जाते हैं। हीरोइन खेतपर टोकरीमें रोटी लेकर आती है। हरी-भरी फ़सलमें आँखमिचौनीका खेल होता है। फ़सल काटते समय हीरोइनके साथ बहुत-सी लड़कियाँ नाचती हैं और गाती भी हैं। वे नाचती जाती हैं और फ़सल अपने आप कटती जाती है। ऐसे ही मधुर दृश्योंको देखकर पढ़े-लिखे आदमी गाँवोंमें आने लगते हैं और खेतोंका चक्कर काटने लगते हैं। इस प्रकार सिनेमा-द्वारा खेतीकी शिक्षा मिलती

है। सच पूछिए तो खेती करनेकी सच्ची शिक्षा मुझे भी सिनेमासे ही मिली थी।

दूसरे दिन चचाने मुझसे खेतोंपर जाकर काम करनेके लिए कहा। मैंने पूछा, "खेत कहाँपर हैं।"

उन्होंने कहा, "गाँवके दक्खिनकी ओर, रमेसरकी बाग़के आगेसे गलियारा जाता है। गलियारेसे पश्चिम एक राह फूटती है। राहसे उत्तर एक मेंड़ जाती है। मेंड़के पूरब गन्नेका एक खेत है। गन्नेके खेतके पास बाजरा खड़ा है। वहीं अपने खेत जोते जा रहे हैं। तुम वहीं जाकर काम देखो।"

मैं चल पड़ा। कुवारका महीना था। आसमानपर हल्के-हल्के बादल थे। ताड़ और खजूरके पेड़ हिल-हिलकर एक दूसरेके गले मिल रहे थे। सब कुछ सिनेमा जैसा लग रहा था। तभी आगे एक कुँआ दीख पड़ा। सिनेमामें हिरोइन कुँएपर पानी भरती है और हीरो खेतकी ओर जाते हुए उससे बातें करता है। मैंने रुककर सीटी बजाई पर कुँआ सुनसान था। किसीके पायल नहीं झनके, न कोई घड़ा टूटा। इसी तरह पूरा रास्ता कट गया। न खेतोंमें आँखमिचौनीका दृश्य दीख पड़ा, न हीरोने बाँसुरी बजाई। न हीरोइनने गाना सुनाया। न खेतोंमें किसानोंने कोरस गाये। मुझे देहातसे बड़ी निराशा हुई। चुपचाप मैं अपने रास्तेपर चलता गया।

अब मैं ऐसी जगह पहुँचा जहाँ मेरे खेत होने चाहिए थे। चचाने बताया था कि वहीं गन्नेका खेत हैं और वहीं बाजरा खड़ा है। मैं गन्नेके बारेमें ज़्यादा नहीं जानता था। इसलिए

बाजरेका सहारा लेना पड़ा। एक मेंड़पर एक अधेड़ किसान खड़ा हुआ था। उसके पास जाकर अपना गाना बन्द करते हुए मैंने पूछा, "आपका नाम बाजरा तो नहीं है?"

किसानने मेरी ओर घूरकर देखा फिर घबराहटके साथ पूछा, "यह आप पूछ क्या रहे हैं? मेरा नाम तो रामचरन है।"

मैंने रामचरनके कन्धेपर हाथ रखकर सार्वभौमिक मित्रताके भावसे कहा, "तो भाई रामचरन, मुझे बताओ यह बाजरा कौन है? कहाँ रहता है? यह खड़ा कहाँ है? इसे क्यों खड़ा किया गया है?" मेरी बात सुनते ही रामचरन ज़ोरसे हँसने लगा। आस-पास काम करते हुए किसानोंको पुकारकर उसने कहा, "यह देखो, ये भैया तो बाजराको आदमी समझ रहे हैं।" दो-तीन किसान हँसते हुए वहीं आ गये। मैं समझ गया कि मुझसे चूक होगई। इसलिए बात पलटते हुए मैंने कहा, "ओ, मैं तो हँसी कर रहा था। दर-असल मैं तो बाजरेके पेड़की छाँह ढूँढ़ रहा हूँ। उसी पेड़के पास मेरे चचाके खेत हैं।"

इस बार वे किसान कुछ और ज़ोरसे हँसे। मुझे भी झेंप-सी लगी। पर मैंने हँसकर इस बातको टाल दिया।

दूसरे दिनसे ही मुझे इस बातकी चिन्ता हुई कि ऐसी चूक मुझसे कहीं दुबारा न हो जाय। इसलिए कृषि-शास्त्रकी मोटी-मोटी किताबें मँगवाकर मैंने उनका अध्ययन आरम्भ कर दिया। गाँवसे मैं हताश हो गया था। यहाँ वह था ही नहीं जो मैंने रुपहले पर्देपर देखा था। फिर भी मैं अध्ययन करता रहा। अध्ययन करते-

करते मैं इस नतीजेपर पहुँचा कि आदर्श खेती गाँवमें हो ही नहीं सकती, वह शहर ही में होती है। यह सब इस प्रकारसे हुआ।

मुझे बीज और खाद ख़रीदनेके लिए बीज-गोदाम जाना पड़ा। बीजगोदामके कर्मचारी शहर गये हुए थे। इसलिए मैं भी शहर चला गया। दूसरे दिन मुझे अपने खेतोंमें अच्छे हलोंसे जोताई करानी थी। अच्छे हल शहरमें मिलते हैं। इसलिए मैं फिर शहर पहुँचा। तीसरे दिन मुझे नहरमें एक नया पाइप लगवानेकी ज़रूरत जान पड़ी। उसके लिए नहरके बड़े इन्जीनियरका हुक्म लेना पड़ता है। वे शहरमें रहते हैं। इसलिए मैं फिर शहर गया। चौथे दिन कुछ कीटाणुनाशक दवाइयाँ ख़रीदनेके लिए मुझे शहरका चक्कर लगाना पड़ा। फिर मुझे कृषि-विभागके एक कर्मचारीकी शिकायत करनेके लिए शहर जाना पड़ा। उसके बादमें मैं जितना ही खेतीकी समस्याओंको समझता गया उतना ही शहर जानेकी आवश्यकता बढ़ती गई। इसलिए एक दिन मैंने कृषि-शास्त्रकी सब किताबें एक बैगमें बंद कीं, और अपनी काड्रॉयकी पतलून और रंग-बिरंगी छापेदार बुशशर्ट पहनी, फ़ेल्ट कैप लगाई और चचासे कहा "देखिए, यह खेतीका काम ऐसा है कि बिना शहर गये इसे साधना कठिन है। इसलिए मैं शहर जा रहा हूँ। वहीं रहूँगा और वहींसे वैज्ञानिक ढंगकी खेती करूँगा।"

चचाने प्रसन्नतापूर्वक हँसकर कहा, "जैसे खूँटेसे छुटी हुई घोड़ी भूसेके ढेरपर मुँह मारती है, जैसे धूपमें बँधी हुई भैंस तालाबकी ओर दौड़ती है वैसे ही तुम्हारा शहरकी ओर जाना बड़ा ही स्वाभाविक और उचित है। मैं आदमी पहचाननेमें कभी चूक

नहीं करता। पर तुम्हें पहचाननेमें ही मुझसे पहली चूक हुई है। जाओ, शहर ही में रहकर खेती करो।"

मैंने भी प्रसन्न मुद्रामें कहा, "नहीं चचा। चूक आपसे नहीं हुई, पहली चूक तो मुझीसे हुई थी जो मैंने बाजरेको पहले आदमी समझा और बादमें उसे छायादार पेड़ समझता रहा। पर कोई बात नहीं। अब मैं शहरमें रहकर बाजरेके विषयमें अपनी रिसर्च करूँगा और बताऊँगा कि किस खादके प्रयोगसे बाजरेकी लताओंमें मीठे और बड़े-बड़े फल लाये जा सकते हैं।"

इस प्रकार हम दोनोंने प्रसन्नतापूर्वक एक दूसरेसे बिदा ली। मैं सीटी बजाता हुआ स्टेशनकी ओर चल दिया और वे बैलोंकी पूँछ उमेठते हुए खेतकी ओर चले गये।

दुभाषिये

जब श्रीमान् तथा श्रीमती खन्ना अपने दो मनोहर बच्चोंके साथ श्रीमान् तथा श्रीमती लालके सजे-बजे ड्राइङ्गरूमसे बाहर आये तो श्रीमती लालने श्रीखन्नासे स्नेह-भरे स्वरोंमें कहा, "शामको ऐसे ही आ जाया कीजिए, भाई साहब। आप तो जानते ही हैं कि यहाँका रहना जेलखाने जैसा रहना है। आप लोगोंके साथ दो-चार घड़ी हँस बोलकर···।"

तभी श्रीमान् खन्नाके अष्टवर्षीय पुत्रने लाल महाशयसे कहा, "अंकिलजी, कल आपलोग आइएगा न ? पिक्···निक्···।"

'पिक्' और 'निक्'के अगले भागपर ज़ोर देकर और पिछले भागको भारहीन बनाकर कुमार खन्नाने लोगोंको हँसानेकी ग़रज़से ऐसा शब्द निकाला कि लोग हँस पड़े।

फिर 'गुडनाइट', 'गुडनाइट', 'टाटा' 'टाऽऽऽऽटाऽ' 'बाई-बाई' 'गुडनाइट, ओल्ड ब्वाय', 'नमस्ते अंकिल' 'आण्टी टा टा;' फिर मोटरके इञ्जनका शब्दहीन शब्द, सामनेकी साफ़-सुथरी क्यारियों, फूलोंभरी रविशोंपर मोटरकी मख़मली रोशनी, पीछेकी लाल बत्तियोंका बढ़ना, धीमा होना, बाहर सीमेण्टकी सड़कपर हल्की सर-सराहट। बरामदेमें केवल लाल-परिवार रह गया।

लम्बी साँस खींचकर लाल महाशयने कहा, "बेईमान कहींका! आया था मोटर दिखाने। हम भी दो-दो रुपये मिस्त्रियोंसे वसूलते होते तो ऐसी दस मोटरें ख़रीद लेते।"

सुनकर श्रीमती रत्ना लाल हँसने लगीं। बोलीं, "इस तरह बिगड़नेकी क्या बात है ? अपनी पुरानी मोटर ही क्या बुरी है ?"

इस बातका विचार करके कि खन्नाकी बेईमानी और उनकी ईमानदारीका हाल सुननेवाली उनकी पत्नी ही रह गई है, लाल महाशयने विषय बदल दिया और एक निरर्थक बात कही, "कोई बात नहीं है रत्ना। अपना-अपना ज़माना है।"

श्रीमती रत्ना अर्थपूर्ण भावसे हँसने लगीं।

वे बँगलेके अन्दर जाने लगे तभी सामनेसे आता हुआ एक दुबला-पतला आदमी दिखाई दिया। लाल महाशय बोले, "गुप्ता हैं क्या ?"

गुप्ता वहींसे बोला, "जी हाँ, मैं ही हूँ···पर कोई बात नहीं, मैं सवेरे आ जाऊँगा, आपके खानेका वक्त हो गया होगा।"

वे बोले, "*नहीं-नहीं, आ जाओ।*"

लॉनमें कुर्सियाँ पड़ गईं। वे बैठे। श्रीमती लाल, जो अब तक भुनभुना रही थीं, "अजब लोग हैं, आधी रातको चलते हैं," निकट आकर बैठ गईं और आत्मीयताके साथ पूछने लगीं, "कहिए गुप्ताजी, आपकी बच्चीके क्या हाल हैं ?"

गुप्ताकी बच्चीको बहुत दिन हुए साधारण-सा ज्वर आया था, और बहुत दिन हुए, वह ठीक भी हो गई थी। बिना समझे ही उसने कहा, "वह बिलकुल ठीक है, थैंक्यू।"

लाल महाशयने बैठते ही पूछा, "खन्नाका क्या हुआ ?"

गुप्ता पेशेसे सीनियर इलेक्ट्रिकल इंजीनियरका स्टेनोग्राफर और लाल महाशयके छोटे भाईका सहपाठी था। हँसकर बोला,

"अब क्या होना है ! जो होना था, वह तो पन्द्रह दिन पहले ही हो गया ।"

"क्या मतलब ?"

गुप्ता हँसने लगा। बोला, "अभी-अभी तो खन्ना साहब आपके यहाँसे गये हैं, आपने पूछा नहीं ?"

लाल महाशयने उदासीनतासे कहा, "मैं भई, किसीकी प्राइवेट बातोंमें नहीं पड़ता। मैं क्यों पूछता ?"

गुप्ताने धीरेसे कहना शुरू किया, "अपने इञ्जीनियर साहब तो पुराने फिंकैत हैं...।" फिर आवाज़ बदलकर बोला, "देखिए साहब, यह सब किसीसे आपने कह दिया तो मैं बरबाद हो जाऊँगा।"

लाल महाशयने प्रेमसे कहा, "गुप्ता यार, तू मेरे रवीन्द्रका साथी है। मैं तो तुझे उसीकी जगह मानता हूँ।"

गुप्ताने कहा, "नहीं नहीं, लाल साहब, ज़माना बुरा है। दीवारोंके कान होते हैं। दायें हाथको बायें हाथका एतबार नहीं है। बड़े-बड़े धोखे खाये हैं। तभी डरता हूँ। पर आपको बड़ा भाई न मानता तो आता ही क्यों ? सुनिए, सच बात तो यह है कि खन्ना साहबको मोटर खा गई।"

वे दुखी स्वरमें बोले, "कैसे ?"

"कैसे क्या ? अपने साहबने जनरल मैनेजरको इनकी मुअत्तलीके लिए लिख दिया है। पाँचू ठेकेदारकी शिकायत थी न ? जाँचसे साबित हो गया कि उसका आधा रुपया खन्ना

साहबने दबा लिया है। रसीद जाली है। उसीके पन्द्रह दिन बाद मोटर आई है।"

लाल महाशय बोले, "भगवान् बुरा दिन दुश्मनको भी न दिखाये। अब बताओ गुप्ता, नौकरी किसलिए करते हैं? खाने-पहिननेके लिए ही न? पर समय ऐसा आ गया है कि लोगोंने खन्ना तकको न छोड़ा।"

गुप्ताने कहा, "आपके साथी हैं, इसलिए नहीं कहता। वर्ना काम तो इन्होंने ऐसा किया था कि···।" बातको बीचमें छोड़कर वह बोला, "ये तो हुए मुअत्तल, अब डिप्टी इलेक्ट्रिकल इञ्जीनियर आप ही होंगे।"

पर लाल महाशयपर इस सुखद सूचनाका प्रभाव प्रकट न हुआ। उदासीनतासे बोले, "क्या रखा है ऐसी तरक्क़ीमें गुप्ता? अपना तो यह रहा कि दूसरोंसे पाँच रुपये कम मिलें पर कोई यह न सोचे कि हमने किसीका हक़ मारा। अरे भाई, दो दिनकी ज़िन्दगी, किसीके बुरे बनें भी तो किसलिए?"

सहसा कुर्सीसे सिमटकर वे बोले, "गुप्ता, सीनियर साहबने तो खन्नाको बचानेका वादा किया था।"

गुप्ता बड़े ज़ोरसे हँस पड़ा। उसने कोई जवाब नहीं दिया।

तब लाल महाशय ज़ोर-ज़ोरसे सीनियर साहबकी निष्पक्षताकी प्रशंसा करने लगे।

अचानक गुप्ताने कहा, "आपसे तो वे ख़ुश हैं। कहते थे कि रामनरेश मिश्रको निकाल दिया जायगा।"

आँख सिकोड़ते हुए उन्होंने पूछा, "क्यों?"

गुप्ताने लापरवाहीसे कहा, "आपके खिलाफ़ दरख़्वास्तें दिलाया करता है न !"

लाल महाशयने हँसकर विषयको टाल दिया और अपने भाई रवीन्द्रकी प्रशंसा करने लगे। कहते-कहते कहने लगे, "रवीन्द्र तो कहता था कि उसके मुक़ाबलेमें दर्जेमें एक तुम्हीं थे गुप्ता···।"

उन्होंने इसके कुछ पहले ही इशारेसे श्रीमती रत्नाको वहाँसे हटा दिया था। न जाने इशारा कितना लम्बा था, क्योंकि गुप्ताने खटपट होती सुनकर देखा, उसके बग़लमें एक छोटी-सी मेज़पर दो ग्लास, सोडा, व्हिस्की, बरफ़ सभी कुछ रक्खा है।

उसकी आँखें आनन्दसे फैल गयीं। जब कुछ देर बाद दोनों-के हाथोंमें व्हिस्कीका ग्लास पहुँच गया और पेटमें व्हिस्की पहुँच गई तो लाल महाशयने, जैसे वे बिलकुल निश्चिन्त हों, इस भावसे पूछा, "गुप्ता, यह रामनरेश वाला मामला क्या है ?"

गुप्ताने प्रसन्न होकर कहा, "लाल साहब, मुझे आप रवीन्दर ही समझें। बात कुछ नहीं, बस ज़रा-सी है। बात यह है···।"

उसीके तीन दिन बाद ही श्रीमान् खन्ना निलम्बित अर्थात् मुअत्तल हुए। लाल महाशय प्रलम्बित हुए अर्थात् खन्नाके स्थान-पर डिप्टी इलेक्ट्रिकल इञ्जीनियर बने। उनके अपने स्थानपर रामे-श्वर वर्मा नामका व्यक्ति असिस्टेंट इञ्जीनियर होकर आया।

वह विद्या-सम्पन्न था, विनयविपन्न था। अत्याचारका शत्रु था। अतः उसका कोई मित्र न था। आते ही उसने लाल महा-शयसे पूछा, "भाई साहब, खन्ना जैसे निर्मल आदमीको यह सब कैसे झेलना पड़ा ?"

लाल महाशय बोले, "वर्मा साहब, अब इस बारेमें कुछ न कहिए। मैं तो खरा आदमी हूँ। पता नहीं, मुँहसे कब क्या निकल जाय। समय ख़राब है। सब देखते जाइए। इसीका नाम नौकरी है। और इस फ़ैक्टरीकी नौकरी? मैंने कहा, वर्मा साहब कि अब क्या कहा जाय!"

पर वर्माके पास कुछ कहनेका अभाव न था। बोला, "सीनियरने धोखा दिया। यदि खन्नाने उससे आशा न की होती तो शायद वह कोई बचत ढूँढ़ निकालता।"

लाल महाशय बोले, "अपना-अपना भाग्य।"

वर्माने चिढ़कर कहा, "क्या मतलब है आपका? यानी कि खन्ना इसी लायक़ था! आप उसे नहीं जानते, वह मेरा पुराना साथी है। सहपाठी भी है। हम सात साल साथ पढ़े हैं।"

लाल साहब उदास होकर बोले, "नहीं वर्मा साहब, आपको ग़लतफ़हमी हुई है। किसीने आपसे कुछ कहा है। यह जगह बड़ी नाक़िस है। कोई किसीका नहीं है। आइए, अन्दर बैठें।"

वर्माने नाक सिकोड़कर कहा, "नहीं। अब क्षमा कीजिए। चलूँगा। सीनियरसे अभी ही मिलना है।"

वे बोले, "भाई साहब, ग़लतफ़हमी दूर कर लेना अच्छा है।"

वर्माने कहा, "सुनिए लाल साहब, जहाँ एक दूसरेके लिए प्रेम होता है वहाँ ग़लतफ़हमी नहीं होती। मैं आपको ग़लत नहीं समझ रहा हूँ। आप भी मुझे ग़लत न समझिये।"

वह तेज़ीसे बँगलेके बाहर निकला। साइकिलपर था। उधरसे श्रीमान् खन्नाकी मोटर बंगलेके अन्दर आई। उसने मुसकराकर

नमस्तेका इशारा किया और आगे बढ़ गया। खन्नाने मुसकराकर नमस्तेका उत्तर दिया।

मोटरमें श्रीमती खन्ना अपने पतिसे बोलीं, "साइकिलपर कौन था ? कोई लाल साहबका दलाल होगा ! आया होगा किसीका पेट काटने !"

आहत स्वरमें श्रीमान् खन्नाने कहा "वही इंजीनियर वर्मा है। पैदायशी झगड़ालू है। जहाँ देखो, कुछ-न-कुछ उखाड़-पछाड़ करता है। यहाँ बड़े तिकड़मसे आया है।"

वह बोलीं, "कुछ उजबक-सा है।"

श्रीमान् खन्ना कहते गये, "बहुत ही छोटे ख़ानदानका है। भीख माँग-माँगकर पढ़ा है। मैं उसकी नस-नस जानता हूँ। मेरे ही साथ तो पढ़ता था।"

वे वर्माकी बाबत यह सब कहते रहे पर स्वयं वर्मा साइकिल-पर घिसटता-घिसटता सीनियर इंजीनियरके बँगलेपर पहुँच गया। सीनियर साहबने वर्माका जी खोलकर सत्कार किया। परन्तु उस-पर सीनियरकी प्रसन्न मुद्रा, मैत्रीपूर्ण भाव, क़ीमती सिगरेट, आराम-देह सोफ़ा, गर्म कॉफ़ी, बरक़दान पान—किसीका कोई प्रभाव न पड़ा। सीनियर साहब अपनेसे भी सीनियर जनरल मैनेजरकी दिन-चर्या, उनकी कार्य-क्षमता, उनकी पूजा करनेकी आदत, उनकी ग़रीबपरवरीकी प्रशंसा करते रहे। वर्मा सुनता रहा। वे फिर बोले, "मैंने सोचा था कि खन्नाके केसमें जाकर उनसे बात कर लूँगा। शायद बेचारा बच जाता। पर मेरे पहुँचनेके पहले ही उसकी मुअत्तलीका आदेश आ गया।"

अब वर्माके लिए यह असह्य हो गया। उसने कहा, "क्षमा कीजिएगा, उन्हें मुअत्तल तो आप ही की रिपोर्टपर किया गया है।"

बच्चोंकेसे भोलेपनके साथ वे बोले, "यह किसने बताया तुमसे? मैं तो वर्मा, किसीको नुक़सान पहुँचाना ही नहीं चाहता।"

वर्माने कहा, "बतायेगा कौन? मैंने स्वयं वह रिपोर्ट देखी है। मैं तो हेडक्वार्टरपर ही था। क्षमा कीजिएगा, खन्नाके साथ कुछ अन्याय-सा हो रहा है।"

सीनियर साहब भावुक हो उठे। कहने लगे, "वर्मा, जब तुम मेरी जगह पहुँचोगे तब समझोगे कि मैंने वह रिपोर्ट क्यों लिखी। खन्नाके क़सूरको देखते हुए उसमें कुछ भी नहीं है।"

वर्मा बोला, "आप जानते हैं कि वह कितना ईमानदार है। उसके विरुद्ध कुचक्र रचा गया है। आप चाहते तो वह बच जाता। उस रिपोर्टको भेजना आपके लिए लाज़मी न था। आप चाहते तो उसके विरुद्ध इतनी कड़ुई बातें न लिखते।"

वे बोले, "वर्मा, तुम नहीं जानते। सच कहनेके लिए कभी-कभी कड़ुवी बात कहनी ही पड़ती है।"

न जाने क्यों वर्माको हँसी आ गई। उसने कहा, "या यों कहिए कि कड़ुई बात कहनेके लालचमें कभी-कभी सच भी कहना पड़ जाता है।"

क्षण भरके लिए सीनियरकी भौंहें चढ़ गईं। चेहरा तमतमा उठा। पर उसीके बाद उनके मुँहपर हास्यकी निर्मल छटा फूट

निकली। हँसते हुए वे बोले, "तुम्हारी हाज़िरजवाबी लाजवाब है। कमाल है।"

इस हँसीने वर्माको थोड़ी देरके लिए चुप-सा कर दिया। फिर वह धीरेसे नम्रतापूर्वक बोला, "मैं अपनी सीमाके बाहर जा रहा था। क्षमा कीजिएगा।"

वे हँसते रहे। बोले, "कोई बात नहीं, वर्मा, कोई बात नहीं। तुम्हारे विचार आदर्श हैं। अपने मित्रोंके प्रति ऐसी वफ़ादारी आजकल दिखाता ही कौन है? नौकरीके कुचक्रने तुम्हारे मनपर कोई प्रभाव नहीं डाला है।"

कुछ देर बाद वर्मा चला गया। तब सीनियर महोदय जनरल मैनेजरको एक गोपनीय पत्र लिखाने लगे :

"प्रिय श्री बैनर्जी,

मुझे दुःखके साथ कहना पड़ता है कि श्री खन्नाकी मुअत्तली-के सम्बन्धमें आये हुए श्री रामेश्वर वर्मा, असिस्टेण्ट इंजीनियरने यहाँ आते ही जिस प्रकारसे कार्य आरम्भ किया है, उससे उसका यहाँ रुकना किसी प्रकार भी उचित नहीं माना जा सकता। देखनेमें वह अच्छे व्यवहारका, मिष्टभाषी युवक है पर वास्तवमें वह स्थानीय गुटबन्दी और षड्यंत्रको प्रोत्साहन देने लगा है। इसी अल्पकालमें उसके विरुद्ध अत्यधिक मदिरापान और दुरा-चरणकी भी शिकायत आई है। ऐसे व्यक्तिको फ़ैक्टरीमें किसी

उत्तरदायित्वपूर्ण पदपर रखना किसी भी समय अवांच्छित परिस्थितियाँ पैदा कर सकता है।

ऐसी दशामें उनको अपने पहलेवाले स्थानपर हेडक्वार्टरमें बुला लेना आवश्यक जान पड़ता है।"

साहबका बाबा

चपरासीने अदबसे परदा उठाकर गोल कमरेमें मेरा प्रवेश करा दिया। मैं सोफ़ेपर बैठ गया तो उस कमरेमें पहुँचानेसे एह-सानका बदला पानेकी ग़रज़से बड़ी मित्रता-सी दिखाते हुए उसने पूछा, "बिजलीके छोटे इञ्जीनियर होकर आये हैं न आप ?"

मैंने स्वीकृतिमें सर हिलाया और गम्भीर बननेकी कोशिश की। पर उसकी निराधार मित्रताको जैसे आधार मिलनेवाला हो। उसने फिर पूछा, "बर्टी साहबकी जगह आये हैं न ?"

मैंने गम्भीरतासे कहा, "हाँ।"

उसने फिर प्रेमसे पूछा, "आप तो बाँभन हैं न ?"

डरते हुए, कि कहीं वह पैर न छू ले···मैंने स्वीकारमें सर हिलाया और नाक सिकोड़कर प्रश्नके अनौचित्यपर प्रकाश डाला।

पर चपरासीपर इसका कोई प्रभाव न पड़ा। अदम्य आत्मी-यतासे उसने कहा, "बर्टीकी जगह आप आगये, अच्छा हुआ। बड़ा बदमाश था। सब परेशान थे।"

विषय बड़ा आकर्षक था, फिर भी चीफ़के अर्दलीसे इसपर बात चलाई जाय या नहीं, इसी सन्देहमें मैं कोई उत्तर न दे सका। धीरेसे मुसकराकर फिर गम्भीर हो गया।

चपरासीको जैसे मेरी थाह मिल गई। धीरेसे, जैसे कोई घर-

का आदमी हो, उसने कहा, "आप बैठें, मैं साहबको इत्तिला दे आऊँ।"

वह चला गया। फिर नहीं लौटा। मैं चुपचाप गोल कमरेमें बैठा रहा।

गोल कमरा चौकोर था और सुरुचिपूर्वक सजाया गया था। किसी सौ सवा सौ रुपया महीना पाने वाली सुरुचिने, यानी किसी विभागीय डिज़ाइनरने समझदारीसे बड़े-बड़े किताबी करिश्मे दिखाये थे। मैं एक संगमर्मरी क्यूपिड—कामदेवसे लेकर मिट्टीके बुद्ध तक अपनी निगाह नचाता रहा। एक साथ श्रृङ्गार और शान्त रसमें निमज्जित होता रहा।

इसी बीच दरवाज़ेपर आहट हुई। मैंने उठना चाहा, पर उठते-उठते बैठ गया।

लगभग सात आठ सालका एक लड़का मेरे सामने खड़ा था। गोरा, स्वस्थ, बनियाइन और हाफ़ पैण्ट पहने हुए। बाल मत्थे तक फैले हुए। "घुँघराली लटैं लटकैं मुख ऊपर···" आदि आदि वाला मज़मून। मनमें वात्सल्य भाव उमड़ा। मैंने मुसकराकर कहा, "हलो।"

वह हँसकर मेरे घुटनेके पास आकर खड़ा हो गया। बोला, "हलो।" मैंने प्यारसे उसका सर सहलाया। पूछा, "बेटा, तुम्हारा क्या नाम है?"

उसने कहा, "नहीं बताते।"

मैं झेंपकर हँसने लगा।

तब उसने पूछा, "तुम्हारा क्या नाम है?"

मैंने कहा, "नहीं बताते ।"

वह मेरी गोदपर चढ़ आया। जैसे वह कोई कुर्सी हो। उसका मुलायम शरीर कुछ देर तक बड़ा भला लगा। वह मेरी जाँघोंपर खड़ा हो गया, हाथसे मेरे बाल पकड़कर अपनी ओर खींचते हुए बोला, "क्यों नहीं बताते ? अपना नाम बताओ ?"

अब इस हालतमें अपना नाम बताते हुए मुझे सचमुच ही झेंप लगी। मैंने उसके हाथसे अपने बाल छुड़ाये। बाल बिगड़ जानेपर मन-ही-मन उसे कोसते हुए, उसे नीचे खड़ा कर दिया। फिर, अपने बड़े होनेका अनुभव होते ही, यह सर्वकालीन नसीहत दी, "अच्छे बच्चे ऐसा नहीं करते।"

अब वह बड़ी तीव्रतासे दाँत पीसता हुआ मेरी गोदमें चढ़नेको दौड़ा और चीख़ने लगा, "अच्छे बच्चे ? अच्छे बच्चे ? नाम बताओ। अपना नाम बताओ।"

मुझे डर लगा कि लोग यह न समझें कि मैं उसकी हत्या कर रहा हूँ। अतः चाकर-सुलभ सरलतासे मैंने कहा, "मेरा नाम गोपाल है।"

उसने मेरी टाई अपनी ओर खींचकर आनन्दसे कहा, "अरे वाह रे गुपल्लू! गुपल्लू! गुपल्लू!"

यह कहनेमें उसने जैसा मुँह बनाया उसीसे मैंने निश्चय किया कि बच्चोंको ठीक रखनेके लिए छड़ीका महत्त्व अभी भली-भाँति समझा नहीं गया है।

पर मेरी टाई बिगाड़कर वह कुछ शान्त हो गया। प्रेमसे बोला, "मेरा नाम लीलू है।"

मैंने कहा, "वेरी गुड।"

वह फिर बोला, "दीदीका नाम जानते हो ?"

मैंने 'नहीं'के लिए सिर हिलाया।

"क्वीनी, उसका यार बोलता है।"

मैंने आश्चर्यसे आँखें फैलाईं। उसने कहा, "डैडीका नाम जानते हो ?"

मैंने फिर वैसे ही सर हिलाया। वह बोला, "भेड़िया; शोफ़र बोलता है।···मम्मीका नाम जानते हो ?"

मैंने फिर सर हिलाया तो उसने कहा, "डार्लिङ्ग। डैडी डार्लिङ्ग बोलते हैं।"

मैं उदास होकर बैठ गया तो उसने कहा, "वह क्या है।"

मैंने जवाब दिया, "बुद्धा।"

वह तालियाँ बजाता हुआ उछल पड़ा, बोला, "बुद्धा नहीं, बुद्धू! बुद्धू! तुम बुद्धू! तुम बुद्धू!"

मेरी हास्यप्रियताका दीवाला बहुत पहले निकल चुका था। मैंने ज़रा कड़ाईसे कहा, "चुप रहो।"

इसपर वह चीख़ा, "चुप रहो नहीं; शटअप, शटअप, शटअप ब्लडीफ़ूल!"

मैंने परेशान होकर इधर-उधर देखा। तभी यह भी देखा कि बाल और टाई ही नहीं, मेरे कोट और पतलूनपर भी उसका असर आ चुका है। वहाँ उसके जूतोंके निशान बने हुए हैं। यह मेरी गोदमें चढ़ने-उतरनेका नतीजा था।

मैं रोया नहीं। धीरेसे कहा, "लीलू, क्या बकते हो ?"

वह मुँह मटकाता रहा, "क्या बकता हूँ ? अच्छा।" कुछ देर वह चुप रहा फिर बोला, "उस तस्वीरमें क्या है ?"

"जंगल है।"

"और वह लड़का ओर लड़की।"

मैंने क्यूपिडकी मूर्तिका मनमें नमस्कार करके कहा, "हाँ, वे भी हैं।"

"क्या करते हैं ?"

मैं चुप रहा।

"क्या करते हैं ?" वह चीख़ा।

मैंने कहा, "तुम्हीं बताओ।"

"बताऊँ ?" वह कुछ देर चुप रहा। फिर चिल्लाकर बोला, "किसिंग ! किसिंग ! बताऊँ ?"

मैं कुर्सीसे उठ खड़ा हुआ। मुँहसे निकला, "हे भगवान् !"

तब उसने आख़िरी दाँव लगाया, "कुत्तेका मुँह काला है, तू हमारा साला है।"

तभी दरवाज़ेपर एक भुतनी आकर खड़ी हो गई। यानी, जो आकर खड़ी हुई तो उसे भुतनी कहकर समझना आसान पड़ेगा। काले शरीरपर सफ़ेद साड़ी फब रही थी। लगता था, पीपलके पेड़-से उतरकर छतपर होती हुई किसी भाँति नीचे आ गई है ···।

पर मैं अन्याय कर रहा हूँ। वह मेरी रक्षा करनेको आई थी। मैं उसका आदर करता हूँ। आते ही उसने कहा, "बाबा, बाऽऽ बाऽऽ, अन्दर चलो।"

बाबा आनन्दसे हँसता हुआ अन्दर जाने लगा तभी चीफ़ने

कमरेमें प्रवेश किया। आते ही पूछा, "बाबासे खेल रहे थे? बड़ा शरारती है···हाँ हँ, हँ।"

वे न जाने क्या-क्या बकते रहे। मैं हारा-सा, पिटा-सा, सुनता रहा; सोचता रहा, संसार असार है। कोई किसीका नहीं। कामिनी कंचनका मोह वृथा है। स्वामी रामकृष्ण परमहंसका वचन है कि अनासक्त होकर रहो, जैसे तुम अपने दफ़्तरकी सम्पत्तिको अपनी कहकर भी अपनी नहीं मानते, जैसे तुम्हारी आया तुम्हारे बच्चोंको अपना मुन्ना बताते हुए भी उन्हें अपना नहीं जानती···

तभी सहसा विचार आया, जिस बाबाके वचन मात्रने संसार-की असारता समझा दी, और जिस आयाके दर्शन-मात्रसे कामिनी-कंचनका मोह छूट गया, उनके साथ निरन्तर रहनेवाला यह साहब कितना बड़ा परमहंस होगा! साक्षात् बुद्ध!

अकस्मात् आदरसे फूलकर मैं सोफ़ेपर और भी सिमट आया और साहबके उपदेशको दत्तचित्त होकर भन्तेकी भाँति सुनने लगा।

इतिहास

कालिदासका संक्षिप्त इतिहास

(लोक-कथाओंके आधारपर)

कालिदासका जन्म एक गड़रियेके घरमें हुआ था। उनके पिता मूर्ख थे। उपन्यासकार नागार्जुनने जिस वीरतासे अपने पिताके विषयमें ऐसा ही तथ्य स्वीकार किया है वह वीरता कालिदासमें न थी। अतः उन्होंने इस विषयमें कुछ भी नहीं बताया। फिर भी सभी जानते हैं कि कालिदासके पिता मूर्ख थे। वे भेड़ चराते थे। फलतः कालिदास भी मूर्ख हुए और भेड़ चराने लगे। कभी-कभी गायें भी चराते थे। पर वे बाँसुरी नहीं बजाते थे। उनमें ईश्वरदत्त मौलिकताकी कमी न थी। उसका उपयोग उन्होंने अपनी उपमाओंमें किया है। यह सभी जानते हैं। जब वे मूर्ख थे, तब वे मौलिकताके सहारे एक पेड़की डालपर बैठ गये और उसे उल्टी ओरसे काटने लगे। इस प्रतिभाके चमत्कारको वररुचि पण्डितने देखा। वे प्रभावित हुए। उनके राजा विक्रमकी लड़की विद्या परम विदुषी थी। विद्याका सम्पर्क इस मौलिक प्रतिभासे कराके वररुचिने लोकोपकार करना चाहा। कालिदासकी मूर्खताका थोड़ा प्रयोग उन्होंने राजा विक्रम और विद्यापर बारी-बारीसे किया। परिणाम यह हुआ कि कालिदासका विद्यासे विवाह हो गया। विद्वत्तासे मौलिकता मिल गई।

कुछ इतिहासकार कहते हैं कि वररुचिने विद्यापर क्रोध करके

उसका विवाह एक मूर्खसे कराया, यह ग़लत है। यदि वररुचि विद्यासे नाराज़ होते और उन्होंने उसका अहित करना चाहा होता तो वे उसका विवाह किसी भी मूर्ख राजासे करा देते। किसी भी युगमें ऐसे राजाओंकी कमी नहीं रही है। सच तो यह है कि वररुचिने जो किया वह लोक-कल्याणके लिए किया।

कालिदासकी मूर्खता प्रकट होनेपर विद्याने उनका तिरस्कार किया। वे देवीके एक मन्दिरमें जा गिरे। उनकी ज़बान कट गई और देवीपर जा चढ़ी। देवीने भ्रमवश उन्हें परम भक्त जाना। उनसे वर माँगनेको कहा। मूर्ख होनेके नाते कालिदासने अपनी पत्नीके विरुद्ध कुछ कहना चाहा। किन्तु जैसे ही उन्होंने कहा, "विद्या", भ्रमवश देवीने समझ लिया, विद्या माँग रहा है। फिर क्या था, "तथास्तु"। बस कालिदास विद्वान् हो गये।

आगेका इतिहास मतभेदपूर्ण है। पहले कालिदास किस शताब्दीमें पैदा हुए, इसीको लीजिए। सभी जानते हैं वे विक्रमादित्यके समयमें उत्पन्न हुए थे। विक्रमादित्य चौथी-पाँचवीं शताब्दीके राजा थे। चूँकि कालिदासका विवाह विक्रमकी ही कन्यासे हुआ था, अतः यह चौथी शताब्दीके पहले पैदा नहीं हो सकते थे। यह भी सब जानते हैं कि महाराज भोजसे भी इनकी मेल-मुलाक़ात थी। भोज-प्रबन्ध नामक ग्रन्थमें इसके अनेक प्रकरण मिलते हैं। भोज दसवीं शताब्दीके राजा हैं। इसीसे सिद्ध होता है कि कालिदासका जन्म चौथी शताब्दीमें और अन्त दसवीं शताब्दीमें हुआ। वे लगभग छः सौ वर्ष जीवित रहे। मेरा अनुमान है जिस तरकीबसे उन्हें विद्या मिली थी उसीसे उन्हें दीर्घायु भी मिली।

वे तीन शताब्दियों तक मेघदूत, कुमारसम्भव और रघुवंश जैसे काव्यग्रन्थ लिखते रहे। (ऋतुसंहार अप्रामाणिक है।) बादमें उन्होंने नाटक लिखे क्योंकि जो कविता लिखता है वह सदैव कविता नहीं लिख सकता। कभी-न-कभी अकस्मात् आलोचनापर आनेके पहले वह नाटकपर अवश्य ही उतरता है। उदयशंकर भट्ट, रामकुमार वर्मा आदि इसके उदाहरण हैं। तीन शताब्दियोंमें कालिदासके तीन नाटक, अभिज्ञानशाकुन्तल, विक्रमोर्वशीय और मालविकाग्निमित्र प्रकट हुए।

अभी कुछ दिन हुए हिन्दी पत्रोंमें 'साधना' शब्दको लेकर काफ़ी विवाद चला था। नये लेखक साधना-विरोधी हैं। पर कालिदाससे उन्हें शिक्षा लेनी चाहिए। जन्मसे मूर्खता मिलनेपर भी भाग्यसे उन्हें राज-सम्मान मिला, फिर भी उन्होंने पुस्तकें लिखनेमें जल्दी न की। छः सौ वर्षोंमें उन्होंने छः ग्रन्थ ही प्रकाशित कराये। इसी कारण कालिदासका नाम अबतक चला आ रहा है।

ख़ैर, यह तो विषयान्तर हुआ। विवाहके बाद कालिदास कविता लिखने लगे। यहाँ उन कवियोंको कालिदाससे शिक्षा लेनी चाहिए जो बिना विवाह किये ही कविता लिखने लगते हैं। इसीका फल है कि वे 'तेरे फ़ीरोज़ी ओठोंपर' जैसी पंक्तियाँ लिखकर ओठोंके स्वाभाविक रंगसे अपनी अज्ञताका प्रचार करते हैं। "उभर थे अंबियोंसे उरोज" जैसी बात लिखकर और कुरुचि तक दिखाकर, यह नहीं जान पाते कि अंबियाँ गिरती हैं, उभरती नहीं। जो विवाह करके कविता लिखेगा वह एक तो ऐसी ग़लतियाँ नहीं करेगा और करेगा भी तो उसको सही प्रमाणित करनेका

साहस रक्खेगा। इसीलिए कालिदासने यह काम शादीके बाद आरम्भ किया। यह बात दूसरी है कि उनको अपने ससुर, विक्रमादित्यसे इस विषयमें प्रोत्साहन मिला। आजके कवि इतने भाग्यशाली कहाँ? कभी-कभी किसी सभाकी सदस्यता पा लेनेमें, बची-खुची उपाधि हथिया लेनेमें और साक्षात् अपने ससुरसे श्लोक-श्लोकपर लाख-लाख मुद्राएँ फटकारनेमें बड़ा अन्तर है। आजकल एक तो समझदार लोग अपनी कन्याका विवाह कविसे न करके ओवरसियरसे करना चाहते हैं और कविसे विवाह कर भी दिया तो उमरभर उसके भाग्यपर अकारण रोते हैं। पर कालिदासको ये असुविधाएँ न थीं। इसलिए उनका व्यवसाय अच्छा चला। भोजप्रबन्ध आदिसे विदित होता है कि कुछ दिन बाद वे पक्के व्यवसायी और चतुर व्यक्ति बन गये। जैसे आजकल बहुतसे साहित्यकार अपनी रचनाको पुरस्कृत करानेके लिए पहले एक पुरस्कारका विधान कराके बादमें अपनी रचनाको ही सर्वश्रेष्ठ मनवा लेते हैं, वैसे ही कालिदास स्वयं राजाको समस्या सुझाकर, दूसरे कवियोंकी रचनाओंमें राजाकी इच्छाका संशोधन देकर यह प्रकट करा देते कि श्लोक उन्हींका है और इस प्रकार सहज प्रशंसाके भागी हो जाते थे।

आजकी भाँति पुराने युगमें भी लोग ज्ञानवर्धनके लिए यात्राका महत्त्व समझते थे। इसीलिए कालिदासने भी उत्तर-भारतसे दक्षिण तककी यात्रा की। आज भी उत्तर-भारतके बहुतसे कवि दक्षिण तक जाते हैं। पर उनकी गति कालिदास जैसी नहीं है। सर्वश्री भगवतीचरण वर्मा, नरेन्द्र शर्मा, नेपाली, प्रदीप आदि तो

बम्बई तक ही पहुँचे। श्रीमती विद्यावती 'कोकिल' और सुमित्रानन्दन पन्त पांडिचेरी तक जा चुके हैं। फलतः इनके साहित्यमें उन स्थानोंकी हवाका असर है। सब कुछ होनेपर भी महर्षि रमणके आश्रमसे भी दक्खिन जाने वाले हिन्दी कवि बहुत कम हैं। इस हिसाबसे कालिदासकी सिंहलयात्राका ऐतिहासिक महत्त्व बढ़ जाता है। वे सिंहल अर्थात् सीलोन तक गये थे। इस बीचमें शायद कोई भी महत्त्वपूर्ण हिन्दी कवि सीलोन नहीं गया। आगे भी हमारे यशस्वी कवि सीलोन जायँगे, यह नहीं कहा जा सकता, क्योंकि रेडियो-सीलोनकी नीति अभी भली-भाँति निश्चित नहीं हो सकी है। फिर भी यदि वे किसी सांस्कृतिक आदान-प्रदानमें सीलोन पहुँच भी जायँ तब भी कालिदासकी यात्राका महत्त्व इससे कम नहीं होता क्योंकि उस युगमें उज्जयिनीके राजभवनसे सीलोन तक जाना आजके युगमें दिल्लीके संसद-भवनसे पोलैण्ड तक जानेकी अपेक्षा कहीं अधिक कठिन था।

कालिदासको वेश्याओंसे प्रेम था। विद्वान् जानते ही हैं कि कालिदासने जिस "रमणी, सचिवः सखी मिथः, प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ" की उदात्त कल्पना की है वह वेश्याओंमें बहुत अधिक मिल सकती है। वे रमणी होती ही हैं। आपके चाहनेपर वे सचिव भी हो जाती हैं, और सखी भी। अज-विलापकी नायिका और अपनी वेश्याओंमें अन्तर केवल 'प्रिय-शिष्या' वाली बातको लेकर है। वैसे सनातन कालसे अपने देशका बड़ेसे-बड़ा मूर्ख भी अपनी स्त्रीको अपनेसे अक्लमें छोटा मानकर उसे शिष्यासे ऊँचा नहीं उठने देता, वेश्याके साथ ऐसी बात नहीं।

आप समझदार हों तो स्वयं उसके शिष्य बन सकते हैं। कई कवियोंने तो इसी शिष्यताके सहारे कवित्त-सवैयेकी लकीर छोड़कर ग़ज़लकी झटकेदार कमन्द हथिया ली है। तात्पर्य यह है कि वेश्याका कवि-जीवनमें जो महत्त्व है उसे हमारे जाननेके पहले ही कालिदास जान चुके थे।

उनके मनमें वेश्या-प्रेम कैसे जागा इसको लेकर इतिहासकारों-ने कई धारणाएँ व्यक्त की हैं। कुछका कहना है कि वे पत्नीके शापसे वेश्यागामी बने। कुछ कहते हैं कि कुमारसम्भवके नवम सर्गमें शिव-पार्वतीका संयोग-वर्णन इतना यथार्थवादी हो गया कि साक्षात् पार्वतीको शाप देना पड़ा कि "ओ कवि, तू स्त्री-व्यसनमें मरेगा।" उसीके वशीभूत होकर कालिदास वेश्यागामी हो गये। वैसे यह कथा विश्वास-योग्य नहीं है। देवी-देवता यदि अपने नामपर संयोग-वियोगकी लीलाएँ सुनकर कवियोंको शाप देने लगते तो आजतक कवि-वंशका नाश हो गया होता; नहीं तो बहुतसे कवि संस्कारवश मंदिरोंके दरवाज़ोंपर बैठकर बताशे बेचते होते। या, कविता करते भी होते तो 'दफ़्तरकी इमारत', 'चायसे लाभ', 'खेतीके लिए उपजाऊ खादें' जैसे दोषहीन विषयोंपर कविताएँ लिखते। यदि शृंगार-सुखके वर्णनसे बुरा मानकर पार्वती कालि-दासको शाप दे सकती हैं तो कल कोई रिसर्चका विद्यार्थी यही कहने लगेगा कि तुलसीदासका रत्नावलीसे वियोग इसलिए हुआ कि उन्होंने भगवान् रामको सीताके वियोगमें दुःखी दिखाया था और उनके मनसे जड़-चेतनका विवेक मिटा दिया था।

मेरे विचारसे कालिदासको वेश्या-प्रेमी इसलिए होना पड़ा कि

उनके सरपर उनकी पत्नीका शाप—या प्रताप बोल रहा था। देखनेकी बात है कि कालिदासकी पत्नी उनके प्रति शुरूसे ही कठोर रही। पुरुषकी विद्या और आचरण ही उसके शास्त्रोक्त गुण हैं। पहले कालिदासके पास विद्या न थी, पर आचरण था। तब वह कालिदासका अपमान विद्याहीनताके कारण करती रही। जब वे विद्वान् हो गये और उसे कालिदासको गिरानेकी कोई तरकीब न सूझी तो उसने शाप देकर उनके आचरणको नष्ट कर दिया। और जब किसी सहृदयकी पत्नी ही उसे शाप दे कि "दुराचारी हो जाओ" तो फिर ऐसा कौन पति है जो इस शापको स्वीकार न करेगा।

यह सब शोधकी बातें हैं। सीधा-सादा इतिहास यह है कि कालिदास सीलोन गये। वहाँ एक वेश्याके घर रुके। वहाँ उन्होंने पुरस्कार पानेके लालचमें एक समस्यापूर्ति की। तब उस वेश्याने उन्हें मार डाला और उनकी समस्यापूर्तिके श्लोकको लेकर राजासे काफ़ी धन प्राप्त किया। बादमें उसने राजासे कालिदासको मार डालनेकी बात भी मान ली। इसपर राजाने वेश्याको माफ़ कर दिया। स्वयं वे कालिदासके साथ चितापर जल मरे।

इस घटनासे सिंहल देशकी तत्कालीन न्याय-पद्धतिपर भी प्रकाश पड़ता है। वहाँ यदि अपराधी अपराध स्वीकार कर लेता तो वह छोड़ दिया जाता था। जिसके सामने अपराध स्वीकार किया जाता वह दण्डका भागी होता था। शायद इसीलिए अपराधी तब सही-सही बात बता भी देते थे। इस पद्धतिका प्रभाव भर्तृहरिकालमें अपने देशमें भी था। इसीलिए उन्होंने अपनी रानीको

दूसरे पुरुषमें आसक्त पाकर उसे कोई दण्ड नहीं दिया। ख़ुद अपनेको देश-निकाला दे दिया।

यह सब विषयान्तरकी बातें हैं, जो केवल वैधानिक इतिहासमें आनी चाहिए। हमारे जानने योग्य तो यही बात है कि कालिदास वेश्याके घरमें मारे गये। यदि उसके घरकी तलाशी ली गयी होती तो शायद बहुत-सा कालिदास-रचित भारतीय साहित्य, जो अब सिंहल-देशकी राष्ट्रीय-निधि है, हमारे हाथ लग जाता। पर उस समय अपने देशका कोई हाई कमिश्नर वहाँ नहीं रहता था। इसीसे यह नहीं हो पाया। वास्तवमें, जिस प्रकार हमारे बहुतसे वेद जर्मनीमें पड़े हैं, इतिहास-ग्रंथ इंगलैण्डमें हैं, वैसे ही बहुत-सा काव्य-साहित्य सिंहल देशमें है।

कालिदासका इतिहास मैंने जिस सफ़ाईसे बखाना है उससे आप यह न समझें कि उसमें मतभेद नहीं है। इतिहासका संबंध सच्ची घटनाओंसे है। इसलिए एक-एक घटनापर सौ-सौ मतभेद होते ही हैं। कालिदासके विषयमें भी मतभेद हैं। पर मैंने लोकप्रचलित कथाओंके आधारपर इसे रचा है। इसे लगभग नब्बे प्रतिशत जनता मानती है। इसलिए विद्वानोंको इसे सच्चा इतिहास मानना ही पड़ेगा। यही प्रजातन्त्रका मूल सिद्धान्त है। इसे सच्चा इतिहास मानकर कालिदासके जीवनसे कई शिक्षाएँ लेनी चाहिए। कुछ निम्नलिखित हैं :—

१—यदि कोई जन्मसे मूर्ख है तो उसे घबरानेकी ज़रूरत नहीं; अच्छा विवाह सम्बन्ध हो जानेपर, राज-सम्मान मिल जानेपर या देवके प्रसादसे मूर्ख होनेपर भी आदमी अच्छा कवि माना

जा सकता है, और यशस्वी हो सकता है। ऐसे यशस्वियोंकी कभी कमी नहीं रही।

२—समस्या-पूर्ति करके काफ़ी पैसा पैदा किया जा सकता है, पर पुरस्कारके लिए ही कविता लिखना या समस्या-पूर्ति करना कभी-कभी कुठावँमें मरवाता है।

३—वेश्याओंके यहाँ कभी न जाय। जाना ही हो तो उनके यहाँ जाकर कविता न लिखे। लिखे भी तो उसे कभी सुनाये ही नहीं। सुना भी दे तो उसपर मिलनेवाले पुरस्कारकी चर्चा न करे।

४—बिना विवाह किये कविता न लिखे; लिखे भी तो उपयोगितावादी काव्यकी साधना करे, 'नव विहान आया', 'कट गई रात जड़ता की, घर-घर हुआ साक्षरता प्रचार' जैसे विषयों-पर।

हो सकता है कि कुछ विद्वान् कालिदासके इतिहाससे सहमत न हों। शायद वे यह सिद्ध करना चाहें कि कालिदास एक उत्तम, धनी कुलमें उत्पन्न हुए थे, उनके पिता भी कवि थे, उनकी प्रतिभा-से प्रभावित होकर राजा विक्रमादित्यने उन्हें अपना जामाता बना लिया था, वे सदाचारी थे, अपनी सदाशया पत्नीको छोड़कर किसी और स्त्रीके, नूपुरके अलावा, कोई और आभूषण तक न पहचानते थे, उनका स्वास्थ्य बड़ा अच्छा था, नब्बे वर्षकी अवस्थामें उन्होंने 'हरिः ओम् तत्सत्' कहकर शरीर छोड़ा, आदि आदि। जो यह सिद्ध कर ले जायँगे वे यह भी सिद्ध कर ले जायँगे कि कालिदासके विषयमें मेरी धारणाएँ असत्य हैं। पर इससे मुझे कोई दुःख नहीं होगा। क्योंकि उस दशामें भी कालिदास एक आदर्श

कवि बने रहेंगे। साथ ही मेरा भी बड़ा भारी लाभ होगा। अपनी स्थापनाओंके खंडित हो जाने और उनके मिथ्या प्रमाणित होनेपर भी मैं अमर हो जाऊँगा, क्योंकि बहुत-से इतिहासकार आज भी इन्हीं कारणोंसे अमर माने जाते हैं।

अ० भा० आ० ह० नि० स० का इतिहास

उस दिन मुझे एक कवि मिले। मुझे भोला-भाला समझकर बोले, "जीवन निस्सार है।" मैंने मान लिया। वे फिर एक लम्बी साँस खींच कर बोले, "संसार छलना है, मरीचिका है।" मैंने इसे भी मान लिया। इसपर उन्होंने बड़े गोपनीय भावसे कहा, "मैं तो इस जीवनसे हताश हूँ पर इसे किसीकी धरोहर मान कर चला रहा हूँ। नहीं तो, यह संसार मेरे लिए उजाड़ है, वीरान है।"

मैंने कहा, "इस धरोहरको हड़प लीजिए। ग़बन करते ही यह संसार आपको लहलहाता हुआ नज़र आयेगा।"

वे शान्त, किन्तु करुण भावसे बोले, "नहीं! ऐसा नहीं होगा! यह किसीकी थाती है। जानते हैं आप? कल्लोलिनीकी चंचल बीचियाँ मुझे मूक निमन्त्रण देती हैं, सागरकी उद्धत ऊर्मियोंमें मैं किसीका आवाहन सुनता हूँ। पावसके तरंगायित तड़ाग मुझे पुकार-पुकारकर कहते हैं, 'अरे ओ! अरे ओ! तू, तू, तू, तू' पर नहीं, नहीं, कदापि नहीं! यह शरीर किसीकी थाती है। उसीके लिए सँजो रहा हूँ। ओ तड़ाग, ओ सरिता, सागर ओ! मैं तुम्हारा नहीं। तुम्हारा नहीं!"

मैंने देखा कि कविकी जान जोखिममें है। बस इसीसे मेरे मनमें समाज-सुधारकी भावना जागी: इस कविकी भाँति न जाने

कितने साहित्यिक आत्महत्या करके कालके गालमें समा गये, आत्महत्या हीके कारण कितनी माताओंकी गोद सूनी हो गई, कितनी नारियोंके सुहाग लुट गये, इत्यादि-इत्यादि, न जाने क्या-क्या हो गया। इसलिए आत्म-हत्यासे समाजको बचाना ही चाहिए...।

यही सब सोचते-सोचते मैंने एक आत्महत्या-निवारण-समिति बना डाली। विनम्रतावश मैं सभापति नहीं बना। सभापति एक ऐसे वकीलको बनाया जो वकालत न चलनेके कारण आत्म-हत्या करनेवाले थे, पर यह सोचकर रुक गये थे कि आत्महत्या करनेसे आदमी मर जाता है। उपसभापति मैंने इसी कविको बनाया जो अपने शरीरको दूसरेकी थाती मानकर उसे बड़े आदर और प्रेमसे सँभाले हुए था। मंत्री मैं स्वयं बना, क्योंकि मैं भी कभी आत्महत्या करना चाहता था पर यह सोचकर कि आत्महत्यामें कायरता है और आत्महत्या न करनेमें वीरता है, ऐसा करनेसे बच गया था।

चूँकि प्रत्येक समिति अखिल भारतवर्षीय हो ही जाती है इसलिए इसका नाम रखा गया, 'अखिल भारतवर्षीय आत्महत्या निवारण समिति।' फिर क्या था ? चन्दा इकट्ठा हुआ, विज्ञापन छपे, पर्चे बँटे और समितिका वार्षिक अधिवेशन प्रारम्भ हो गया।

अधिवेशनके दिन लाखोंकी संख्यामें जनता उपस्थित हुई। वे सभी आये जो आत्महत्याकी बात सोच चुके थे। जीवनसे हताश वे नवयुवक आये जिन्हें बम्बई जानेपर भी सिनेमामें काम

नहीं मिला था। पढ़ी-लिखी नवयुवतियाँ आईं जिनके लिए जगत्‌में प्रेम ही एक सार था और कुछ सार नहीं था। कई ऐसे आये जो भर्तृहरिकी तरह अपनी बीबीके हाथों चोट खा चुके थे और 'धिक् तां च तं च'का पहाड़ा पढ़ रहे थे। कई ऐसे थे जो विश्वामित्रकी भाँति उमरभरकी कमाई किसी अप्सराके चरणोंमें लुटा चुके थे। फिर तो बहुतसे जनता-जनार्दन आये, न जाने कितने दरिद्र-नारायण आये। ऐसे कवि आये जिन्होंने नोबेल पुरस्कार पानेकी आशासे पुस्तकें लिखी थीं परन्तु वे पुस्तकें अश्लीलताके आरोपपर ज़ब्त हो चुकी थीं। ऐसे-ऐसे राजनीतिज्ञ आये जो समाजकी व्यवस्थामें नूतन क्रान्ति लानेकी आशा करते थे पर पाकेटमार कहे जाकर क़स्बेके बाहर निकाल दिये गये थे। बहुतसे ऐसे भी थे जो अन्तर्जातीय और अन्तर्राष्ट्रीय विवाहके माध्यमसे विश्व-बन्धुत्व-का प्रसार करना चाहते थे पर लोगोंने उन्हें बदचलन और आवारा समझ लिया था। सब ज़मानेकी गर्दिशमें थे, सभीको बेदर्दी दुनियाने सताया था, सभी समाजकी बलिवेदीपर चढ़ चुके थे।

सम्मेलनका आरम्भ मेरे कवि मित्रकी कविता और व्याख्यान-से हुआ। अपनी कवितामें उन्होंने फिर बताया कि जीवन निस्सार है और इसे क़ायम रखना बेकार है। पर यह किसीकी थाती है, इसलिए इसे सँवार, सिंगारकर रखना चाहिए। तात्पर्य यह था कि इस शरीरको कष्ट न देना चाहिए। अच्छा खाना खिलाना चाहिए, बढ़ियाँ कपड़े पहनाने चाहिए और यदि पैरमें काँटा लग गया तो समझना चाहिए कि किसीने पेटमें भाला भोंक दिया है।

अपने व्याख्यानमें उन्होंने समझाया "चहुँ ओर मरीचिकाओं-की छलना है। प्रकृतिके प्रत्येक सुरम्य, सुमधुर स्पन्दनमें एक मूक इंगित है। कोई कहता है, 'चलो चलें इस उत्पीड़न और उत्क्रन्दनके लोकके उस पार। दिवा स्वप्नोंके इस मोहक आवेष्टन-को तोड़कर, जीवनकी जटिल विडम्बनाको फोड़कर।' गहन तरुराजियोंका स्वप्निल अन्धकार, दुर्गम गिरि-गह्वरोंकी अस्पष्ट गहनता, सागरका मर्मर सरिताकी उत्ताल तरंगें—प्रकृतिके ये सभी उपादान अस्फुट स्वरोंमें मुझसे कहते हैं, आओ, आओ, आओ!" मैं जगत्की जड़तासे जर्जर, प्रलुब्ध-सा, मंत्रमुग्ध-सा, स्वप्नाविष्ट-सा, आगे बढ़ता हूँ। पर सुदूर क्षितिजके अन्तरालसे किसीका मौन सन्देश समीरणके स्यन्दनपर चढ़कर आता है और मुझसे कह जाता है, 'नहीं, नहीं, तू अपना नहीं। किसी औरका है। इस आवाहनको न सुन। इसका प्रत्याख्यान कर। अरे! ओ तू, ओ तू, ओ तू!"

कविकी आवाज़ भर्राने लगी। आँखें छलछला उठीं। शब्द लड़खड़ाने लगे। पैर डगमगाने लगे। वे बैठ गये। सब अवसादमें डूब गये। तालियाँ तक नहीं बजीं।

ऐसे ही कई व्याख्यानोंके द्वारा हमने श्रोताओंको समझा दिया कि हमें ज़िन्दा रहना है, "तू जीता जा, तू जीता जा, विषको अमृत कर पीता जा।" "अकेलेपनका बल पहचान।" "न हिम्मत हार न हिम्मत हार।" "अब भी चेत ले तू नीच।" आदि-आदि।

मैंने यह भी समझाया कि आत्म-हत्या कायरताकी निशानी

है, वीरता तो ज़िन्दा रहनेमें है। यह बात सभीको पसन्द आयी। सर्व-सम्मतिसे हम लोगोंने यह प्रस्ताव पास किया :—

आत्महत्या-निवारक समितिके सदस्य सर्व सम्मतिसे यह प्रस्ताव करते हैं कि जनता जीवनके महत्त्वको समझे और यह जान ले कि आत्महत्या कायरताका नाम है और जीवित रहनेमें ही वीरता है। यह समिति जनतासे अनुरोध करती है कि यह जीवित रहकर पृथ्वीको वीर-विहीन होनेसे बचा ले।

दूसरा प्रस्ताव स्वयं सभापतिकी ओरसे आया। वकील साहबने अपने उत्साहपूर्ण व्याख्यानमें कहा, "सज्जनो, यह तो आप जानते ही हैं कि आत्महत्या एक निहायत ख़तरनाक काम है। इसमें इन्सान मर तक सकता है। आपको यह भी मालूम है कि ताजी-रात हिन्दकी दफ़ा ३०९ के मुताबिक यह एक जुर्म भी है। मगर वह जुर्म कब है? जब कि मुलज़िम आत्महत्या न करने पावे। यानी आत्म-हत्या जुर्म नहीं है बल्कि आत्म-हत्याकी कोशिश करना ही जुर्म है। इसकी सज़ा भी बहुत मामूली है। मुजरिमको सिर्फ़ जेल या जुर्माना भुगतना होता है। इस सिलसिलेमें मेरे दो प्रस्ताव हैं :

पहला तो यह कि आत्महत्या जैसे ख़तरनाक जुर्मकी कोशिश करना भी बड़ा भारी जुर्म है, इसलिए जो शख़्स आत्महत्या करने-की कोशिश करता है उसे कम-से-कम फाँसीकी सज़ा देना चाहिए और इस ख़यालसे दफ़ा ३०९ की तरमीम की जानी चाहिए। दूसरा प्रस्ताव यह है कि जो आत्महत्याका जुर्म कर चुका हो

उसे भी सख़्त सज़ा देनी चाहिए। यानी, उसे भी जेल, काला-पानी या फाँसी तक की सज़ा होनी चाहिए।

लोगोंने तालियाँ पीटकर इन प्रस्तावोंका स्वागत किया और उन्हें सर्वसम्मतिसे मान लिया।

धन्यवाद देते हुए मैंने भी लगे हाथ कुछ प्रस्ताव पास करा लिये जिनका आशय यह था कि रोगका इलाज करनेके बजाय उसकी रोक-थाम अधिक आवश्यक है। इसलिए सर्वसम्मतिसे ये सुझाव दिये गये कि कवियोंको तैरनेकी और घुड़सवारीकी शिक्षा दी जाय ताकि उन्हें समुद्र और पहाड़में आत्महत्याका आवाहन न मिले। लोगोंको खुलेआम प्रेम करने और प्रेम-विवाह करनेकी छूट दी जाय, उसमें बाधा डालने वालेको आत्महत्याका सहायक समझकर उसका चालान किया जाय। मैंने यह भी प्रस्ताव रक्खा कि ग़रीबों और भुखमरोंके लिए खाने-कपड़ेकी व्यवस्था की जाय, पर यह कहकर कि यह प्रश्न राजनीतिका है और जीवनके शाश्वत सत्योंसे गिरा हुआ है, कविने इस प्रस्तावका विरोध किया। चूँकि हमारी समिति राजनीति और विरोधसे दूर रहना चाहती थी इसलिए हमने इस प्रस्तावको वापस ले लिया।

वह सभा ही क्या जहाँ चन्दा न हो! इसलिए मैंने अधि-वेशनमें दो रुपया फ़ी नफ़रके रेटसे चन्देकी माँग की। जिन्हें अपना जीवन दे-देनेमें झिझक नहीं थी, उन्हें दो रुपया देनेमें क्या संकोच होता। देखते-देखते लगभग बीस हज़ार रुपयेकी पूँजी सभापतिके सामने इकट्ठा हो गई।

अब आपको बता दूँ कि ऐसी महत्त्वपूर्ण समितिका अन्त किस प्रकार हुआ।

सम्पत्ति ही सब झगड़ोंकी जड़ है। महाभारत इसी कारण हुआ था। मैं तो उस दिनके बादसे व्यक्तिगत सम्पत्तिका शत्रु बन गया हूँ और राजनीतिको अपना अन्तिम सहारा मानकर उसीमें आ गया हूँ।

हुआ यह कि अधिवेशन समाप्त होते ही मैंने देखा कि सभापति और उपसभापति दोनों ही अपने सीनेपर एक-एक छुरा ताने खड़े हुए हैं। सभापति कह रहे थे, "नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। मुझे रुपया न मिला तो मैं आत्म-हत्या कर लूँगा।"

कविने कहा, "नहीं, यह रुपया भी किसीकी धरोहर है। यह मेरे शरीरके ही साथ रहेगा, वैसे ही, जैसे शरीरमें मन और प्राण रहते हैं। तुम बाधा डालोगे तो मैं स्वयं आत्म-हत्या कर लूँगा।"

अब आप समझ सकते हैं कि क्या हुआ होगा। मेरे बीचमें पड़ जानेसे केवल समितिकी ही हत्या हुई। उन्होंने आत्म-हत्या नहीं की और न आगे कभी करेंगे।

पुराण

अंगद्का पाँव

वैसे तो मुझे स्टेशन जाकर लोगोंको विदा देनेका चलन नापसन्द है, पर इस बार मुझे स्टेशन जाना पड़ा और मित्रको विदा देनी पड़ी। इसके कई कारण थे। पहला तो यही कि वे मित्र थे। और, मित्रोंके सामने सिद्धान्तका प्रश्न उठाना ही बेकार होता है। दूसरे, वे आज निश्चय ही पहले दर्जेमें सफ़र करनेवाले थे, जिसके सामने खड़े होकर रूमाल हिलाना मुझे एक निहायत दिलचस्प हरकत जान पड़ती है।

इसलिए मैं स्टेशन पहुँचा। मित्रके और भी बहुतसे मित्र स्टेशनपर पहुँचे हुए थे। उनके विभागके सब कर्मचारी भी वहीं मौजूद थे। प्लेटफ़ार्मपर अच्छी ख़ासी रौनक़ थी। चारों ओर उत्साह फूटा-सा पड़ रहा था। अपने दफ़्तरमें मित्र जैसे ठीक समयसे पहुँचते थे, वैसे ही गाड़ी भी ठीक समयपर आ गई। अब उन्होंने स्वामिभक्त मातहतोंके हाथों गलेमें मालाएँ पहनीं, सबसे हाथ मिलाया, सबसे दो-चार रस्मी बातें कहीं और फ़र्स्ट क्लासके डिब्बेके इतने नज़दीक खड़े हो गये कि गाड़ी छूटनेका ख़तरा न रहे।

गाड़ी छूटनेवाली थी। लोगोंने सिगनलकी ओर देखा। वह गिर चुका था।

अब चूँकि कुछ और करना बाक़ी न था इसलिए उन्होंने

उन लोगोंमें-से एक आदमीसे बातें करनी शुरू कीं जो ऊपरी मनसे हर कामके आदमीको दावतके लिए बुलाते हैं और जिनकी दावतोंको हर आदमी ऊपरी मनसे हँसकर टाल दिया करता है। हमारे मित्र भी उनकी दावत टाल चुके थे। इसलिए वे कहने लगे, "इस बार आऊँगा तो आपके ही यहाँ रुकूँगा।"

वे हँसने लगे। कहने लगे, "आप हीका घर है। आनेकी सूचना भेज दीजिएगा। मोटर लेकर स्टेशन आ जायेंगे।" तब मित्रने कहा कि मोटरकी क्या ज़रूरत है। तब वे बोले कि वाह साहब, मोटर आप ही की है, इसमें तकल्लुफ़की क्या ज़रूरत है। तब मित्र बोले कि तकल्लुफ़ घर वालोंसे तो किया नहीं जाता। तब वे बोले, जाइए साहब, ऐसा ही घरवाला मानते तो आप बिना एक शाम हमारे ग़रीबख़ानेपर रूखा-सूखा खाये यों ही न निकल जाते। तब मित्रने कहा कि ऐसी क्या बात है, आप ही-का खाता हूँ। तब वे हें-हें करने लगे। तभी गाड़ीने सीटी दे दी और लोग आशापूर्वक सिगनलकी ओर झाँकने लगे।

मैंने इस बात-चीतमें कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई क्योंकि मित्रको हमेशा मेरे ही यहाँ आकर रुकना था और हम दोनों इस बातको जानते थे।

ठीक वैसे ही जैसे मित्र दफ़्तरमें आते तो समयसे थे पर जानेमें हमेशा कुछ देर कर देते थे वैसे ही समय हो जानेपर भी गाड़ीने सीटी तो दे दी पर चली नहीं। इसलिए फिर रुक-रुककर इन विषयोंपर बातें होने लगीं कि मित्रको पहुँचते ही सबको चिट्ठी लिखनी चाहिए और उस शहरमें अमरूद अच्छे मिलते हैं और

साहब, आइएगा तो अमरूद ज़रूर लाइएगा। तब पुराने नौकरने बताया कि नाश्तेदानको बिस्तरके पीछे रख दिया है। तभी पुराने हेड क्लर्क बोले कि बिस्तर तो सीटपर बिछा दिया गया है। तब एकाउण्टेण्टने कहा कि बिस्तरका सिरहाना उधरके बजाय इधर होता तो अच्छा होता क्योंकि उधर कोयला उड़कर आयेगा। तब हेड क्लर्क बोले कि नहीं, कोयला उधर नहीं आयेगा बल्कि उधरसे सीनरी अच्छी दिखेगी। तभी कैशियर बाबू आ गये; उन्होंने मित्रको दस रुपयेकी रेज़गारी दे दी। तब मित्रने खुले-आम उनके कन्धेको थपथपाया और खुले गलेसे उन्हें धन्यवाद दिया।

पर इस सबसे न तो कुछ होना था, न हुआ। लोग महीना-भरसे जानते थे कि मित्रको जाना है। इसलिए मतलबकी सभी बातें पहले ही अकेलेमें ख़त्म हो चुकी थीं और सबके सामने वे सभी बातें की जा चुकी थीं जो सबके सामने कही जाती हैं। सामान रक्खा ही जा चुका था, टिकट ख़रीदा ही जा चुका था। मालाएँ डाली ही जा चुकी थीं। हाथ या गले या दोनों मिल ही चुके थे और गाड़ी चलनेका नाम तक न लेती थी। थियेटरमें जब हीरोपर वार करनेके लिए विलेन ख़ंजर तानकर तिरछा खड़ा हो जाता है, उस वक़्त परदेकी डोरी अटक जाय तो सोचिए क्या होगा? कुछ वैसी ही हालत थी। परदा नहीं गिर रहा था।

चूँकि मेरे पास करनेको कोई बात नहीं रह गई थी इसलिए मैं मित्रसे कुछ दूर जाकर खड़ा हो गया और किसी ऐसे आदमी-की तलाश करने लगा जो बराबर बात कर सकता हो। जो ऐसा

आदमी नज़रमें आया उसे मित्रकी ओर ठेल भी दिया। उसने अपनी हमेशा वाली मुसकान दिखाते हुए कहा, "आपके जानेसे यहाँका क्लब सूना हो जायगा।" मित्रने हँसकर इस तारीफ़से इनकार किया। उसने फिर कहा, "पहले ब्राउन साहबके ज़मानेमें टेनिस इसी तरह चली थी पर बीचमें दब गई थी। आपके ज़मानेमें फिर ज़ोर पकड़ने लगी थी पर अब देखिए क्या होता है।" मित्र बोले, "होता क्या है ? आप चलाइए।" तभी वे एकदम नाराज़ हो गये। तुनककर बोले, "मैं क्या चला सकता हूँ जनाब, मुझे तो ये लड़के क्लबका सिक्रेटरी ही नहीं होने देना चाहते। अब कोई टिकियाचोर सेक्रेटरी हो तभी टेनिस चलेगी। मुझे तो ये निकालनेपर आमादा हैं।" बोलते-बोलते वे अकड़कर खड़े हो गये। मित्रने हँसकर इस विषयको टाला। उसके बाद इनकी बातोंका भी दिवाला पिट गया और बात आई-गई हो गई।

पर गाड़ी नहीं चली।

मित्र कुछ देर तक बेचैनीसे सिगनलकी ओर देखते रहे। कुछ लोग प्लेटफ़ार्मपर इधर-उधर टहलकर पान-सिगरेटके इन्तज़ाममें लग गये। कुछको अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओंने इस क़दर बेज़ार किया कि वे पासके बुकस्टॉलपर अख़बार उलटने लगे। कुछके मनमें कला, कौशल और ग्रामोद्योगोंके प्रति एक दमसे प्रेम उत्पन्न हो गया। वे पासकी एक दूकानपर जाकर हैंडिक्रैफ़्टके कुछ नमूने देखने लगे। तब तक एक पुराना स्थानीय नौकर मित्रके हाथ लग गया। उसे देखते ही अचानक मित्रके मनमें समाजकी समाज-

वादी व्यवस्थाके प्रति विश्वास पैदा हो गया। वे हँसकर उसकी प्रशंसा करने लगे। तब वह रोकर अपनी पारिवारिक विपत्तियाँ सुनाने लगा। अब मित्र बड़े करुणाजनक भावसे उसकी बातें सुनने लगे। तब कुछ टिकट चेकर तेज़ीसे आये और सामनेसे निकल गये। मित्रने उनकी ओर देखा पर जब तक वे कुछ बात करनेकी बात तै करें कि वे आगे निकल गये। तब तक एक लम्बा-सा गार्ड सीटी बजाता हुआ निकला। हेड क्लर्कने कहा, "सुनिए साहब", पर यह उसने अनसुना कर दिया और सीटी बजाता हुआ आगे बढ़ गया।

पर गाड़ी फिर भी नहीं चली।

कुछको परिस्थितिपर दया आई और वे फिर मित्रके पास सिमट आये। पर घूम-फिरकर कई लोगोंने कई छोटे-छोटे गुट बना लिये और कलाके लिए जैसे कला—वैसे बातके लिए बातें चल निकलीं। एक साहबकी निगाह मित्रकी फूल-मालाओंपर गई। उनको उसीसे प्रेरणा मिली। बोले, "गेंदेके फूल भी क्या कमाल पैदा करते हैं। असली फूल-मालाएँ तो गेंदेके फूलोंकी ही बनती हैं।"

बात-चीतकी सड़ियल मोटर एक बार जब धक्का खाकर स्टार्ट हो गई तो उसकी फटफटाहटका फिर क्या पूछना! दूसरे महाशयने कहा, "इण्डियामें अभी तो जैसे हम बैलगाड़ीके लेवेलसे ऊपर नहीं उठे वैसे ही फूलोंके मामलेमें गेंदेसे ऊपर नहीं उभर पाये। गाड़ियोंमें बैलगाड़ी, मिठाइयोंमें पेड़ा, फूलोंमें गेंदा, लीजिए जनाब, यही है आपकी इण्डियन कल्चर!"

इसके जवाबमें एक दूसरे साहबने भीड़के दूसरे कोनेसे चीख़कर कहा, "अंग्रेज़ चला गया पर अपनी औलाद छोड़ गया।"

इधरसे उन्होंने कहा, "जी हाँ, आप जैसा हिन्दुस्तानी रह गया पर दिमाग़ बह गया।" इतना कहकर, जवाबमें आने वाली बातका वार बचानेके लिए वे फिर मित्रकी ओर मुख़ातिब हुए और कहने लगे, "बताइए साहब, गुलाबकी वो-वो वैरायटी निकाली है कि···।"

तभी गार्डने फिर सीटी दी और वे चौंककर इंजिनकी ओर देखने लगे। इंजिन एक नये ढंगसे सीं-सीं करने लगा था। कुछ सेकंड तक यह आवाज़ चलती रही पर उसके बाद फिर पहले वाली हालतपर आ गई, ठीक वैसे ही, जैसे दफ़्तर छोड़नेके पहले मित्र कभी-कभी कुर्सीसे उठकर भी कोई नया काग़ज़ देखते ही फिरसे बैठ जाते थे। तब उस पुष्प-प्रेमीने अपना व्याख्यान फिरसे शुरू किया, "हाँ साहब, तो अंग्रेज़ोंने गुलाबकी वो-वो वैरायटी निकाली है कि कमाल हासिल है। सन बर्स्ट, पिंक पर्ल, लेडी हैलिंग्टन, ब्लैक प्रिंस, वाह, कमाल हासिल है! और अपने यहाँ? यहाँ तो जनाब वही पुराना टुइयाँ गुलाब लीजिए और ख़ुशबूका नगाड़ा बजाइए।"

बात यहीं पर थी कि इस बार गार्डने सीटी दी। बहस थम गई। पर कुछ देर गाड़ीमें कोई हरकत नहीं हुई। इसलिए वे दूसरे महाशय भी भीड़को फाड़कर सामने आ गये। अकड़कर बोले, "हाँ साहब, ज़रा फिरसे तो चालू कीजिए वही पहलेका

दिमाग़ वाला मज़मून। मेरा तो भई, दिमाग़ हिन्दुस्तानी ही है, पर आइए, आपके दिमाग़को भी देख लें।"

तब मित्र महोदय बड़े ज़ोरसे हँसे और बोले, "हातिम भाई और सक्सेना साहबमें यह हमेशा ही चला करता है। याद रहेंगे, साहब, ये झगड़े भी याद रहेंगे।"

इस तरह यह बात भी ख़तम हुई, झगड़ेको मज़बूरन मैदान छोड़ना पड़ा। उधर सिग्नल गिरा हुआ था। इञ्जिन फिरसे 'सीं-सीं' करने लगा था। पर गाड़ी अंगदके पाँव-सी अपनी जगह टिकी थी।

भीड़के पिछले हिस्सेमें दर्शन-शास्त्रके एक प्रोफ़ेसर धीरे-धीरे किसी मित्रको समझा रहे थे, "जनाब, ज़िन्दगीमें तीन बटे चार तो दबाव है, कोएर्शनका बोल-बाला है, बाक़ी एक बटे चार अपनी तबीयतकी ज़िन्दगी है। देखिए न, मेरा काम तो एक तख़्तसे चल जाता है, फिर भी दूसरोंके लिए ड्राइंग-रूममें सोफ़े डालने पड़ते हैं। तन ढाँकनेको एक धोती बहुत काफ़ी है, पर देखिए, बाहर जानेके लिए यह सूट पहनना पड़ता है। यही कोएर्शन है। यही ज़िन्दगी है। स्वाद ख़राब होनेपर भी दूध छोड़कर कॉफी पीता हूँ, जासूसी उपन्यास पढ़नेका मन करता है पर काण्ट और हीगेल पढ़ता हूँ; और जनाब, गठियाका मरीज़ हूँ पर मित्रोंके लिए स्टेशन आकर घंटों खड़ा रहता हूँ।"

वे और उनके श्रोता—दोनों रहस्यपूर्ण ढंगसे हँसने लगे और फिर मुझे अपने नज़दीक़ खड़ा पाकर और ज़ोरसे खुलकर हँसने लगे ताकि मुझे उनकी निश्छलतापर सन्देह न हो सके।